ओ३म्

भगवती-भाष्य-समलंकृतम्

श्रीमद्वाल्मीकीयरामायणम्

(सचित्र)



अनुवादक, सम्पादक एवं टिप्पणिकर्ता

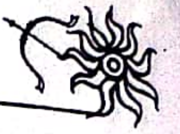
परमहंस स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती

वेदरत्न, वेदमार्तण्ड



विजयकुमार गोविन्दराम हासानन्द

सुन्दरकाण्डम्



अथ सुन्दरकाण्डम्

◀ प्रथमः सर्गः ▶ (१)

हनुमान् का समुद्र को पार करना—

ततो रावणनीतायाः सीतायाः शत्रुकर्षणः।
इयेष पदमन्वेष्टुं चारणाचरिते पथि॥ १॥

जाम्बवान् के उत्साहित करने पर शत्रुओं का मानमर्दन करनेवाले हनुमान्जी सीता का पता लगाने के लिए आकाश के उस मार्ग से जिस पर सिद्ध लोग गमन किया करते हैं, जाने को तैयार हुए।

उत्पपाताथ वेगेन वेगवानविचारयन्।
सुपर्णमिव चात्मानं मेने स कपिकुञ्जरः॥ २॥

तैयार होकर, मार्ग के विघ्न-बाधाओं की कुछ भी परवाह न कर वेगवान् हनुमान्जी अत्यन्त वेगपूर्वक आकाश में उड़ने लगे।[१] उस समय कपिश्रेष्ठ हनुमान्जी ने अपने आपको गरुड़ के सदृश समझा।

हनूमान् मेघजालानि प्रकर्षन्मारुतो यथा।
प्रविशन्नभ्रजालानि निष्पतंश्च पुनः पुनः॥ ३॥

आकाश में उड़ते हुए हनुमान्जी मेघमण्डल को ऐसे चीरते-फाड़ते चले जाते थे जैसे वायु मेघमाला को छिन्न-भिन्न कर देता है। हनुमान्जी कभी तो बादलों के भीतर छिप जाते थे और कभी बादलों के बाहर प्रकट हो जाते थे।

प्लवमानं तु तं दृष्ट्वा सिंहिका नाम राक्षसी।
मनसा चिन्तयामास प्रवृद्धा कामरूपिणी॥ ४॥

हनुमान्जी को आकाश-मार्ग से जाते देखकर अत्यन्त वृद्धा, परन्तु बलवती एवं इच्छानुसार नाना रूप धारण करनेवाली सिंहिका नाम की राक्षसी अपने मन में विचार करने लगी—

अस्य दीर्घस्य कालस्य भविष्याम्यहमाशिता।
इदं हि मे महत्सत्त्वं चिरस्य वशमागतम्॥ ५॥

आहा! आज मुझे बहुत समय के पश्चात् भर पेट खाने को मिलेगा। आज यह विशालकाय प्राणी चिरकाल के पश्चात् मेरे वश में आया है।

इति संचिन्त्य मनसा छायामस्य समाक्षिपत्।
छायायां संगृहीतायां चिन्तयामास वानरः॥ ६॥

अपने मन में ऐसा विचार कर सिंहिका ने हनुमान्जी की परछाईं पकड़ी। (हनुमान्जी का पीछा किया।) सिंहिका द्वारा अपना पीछा किये जाने पर हनुमान्जी विचार करने लगे—

कपिराज्ञा यदाख्यातं सत्त्वमद्भुतदर्शनम्।
छायाग्राहि महावीर्यं तदिदं नात्र संशयः॥ ७॥

कपिराज सुग्रीव ने जिस अद्भुत छायाग्राही व्यक्ति के सम्बन्ध में कहा था यह वही महापराक्रमी छायाग्राही प्राणी है—इसमें कोई सन्देह नहीं।

तां तु दिष्टया च धृत्या च दाक्षिण्येन निपात्य हि।
उत्पपाताथ वेगेन मनः सम्पातविक्रमः॥ ८॥

अपना पीछा करनेवाली सिंहिका को दूर से ही देखकर हनुमान्जी ने अपने धैर्य और चतुराई से उसे मार गिराया तत्पश्चात् वे पुनः वेगपूर्वक आकाश में उड़ चले।

---

१. रामायणकाल में Monoplanes—छोटे-छोटे विमान होते थे। हनुमान्जी भी ऐसे विमान द्वारा ही लंका गये थे। **'उत्पपात'** रामायणकाल का एक Idiom—मुहावरा है। आजकल भी जब कोई बड़ा व्यक्ति वायुयान द्वारा यात्रा करता है तो समाचार-पत्रों में छपता है—He flew to London वह लन्दन के लिए उड़ गया। जानेवाला पक्षी की भाँति उड़कर नहीं जाता, अपितु वायुयान के द्वारा जाता है। ठीक इसी प्रकार हनुमान्जी भी वायुयान द्वारा ही उड़कर गये थे।



तां हतां वानरेणाशु पतितां वीक्ष्य सिंहिकाम्।
भूतान्यकाशचारीणि तमूचुः प्लवगर्षभम्॥ ९॥

हनुमान्‌जी द्वारा बात-की-बात में मारकर गिराई हुई सिंहिका को देखकर आकाशचारी प्राणियों ने हनुमान्‌जी से कहा—

भीममद्य कृतं कर्म महत्सत्त्वं त्वया हतम्।
साधयार्थमभिप्रेतमरिष्टं गच्छ मारुते॥ १०॥

हे पवनपुत्र! तुमने आज इस महापराक्रम शालिनी राक्षसी को मारकर अत्यन्त भयंकर और आश्चर्योत्पादक कर्म किया है। आपका कल्याण हो। अब आप अपने अभीष्ट कार्य को सिद्ध करो।

यस्य त्वेतानि चत्वारि वानरेन्द्र यथा तव।
धृतिर्दृष्टिर्मतिर्दाक्ष्यं स कर्मसु न सीदति॥ ११॥

हे वानरेन्द्र! तुम्हारी तरह जिसमें धैर्य, सूक्ष्म-दृष्टि, बुद्धि और चातुर्य—ये चार गुण होते हैं वह अपने किसी भी कार्य में असफल नहीं होता।

स तैः सम्भावितः पूज्यैः प्रतिपन्नप्रयोजनः।
जगामाकाशमाविश्य पन्नगाशनवत्कपिः॥ १२॥

पूजनीय हनुमान् उन लोगों द्वारा सम्मानित होकर और अपने कार्य की सिद्धि के विषय में निश्चित्-सा हो गरुड़ की भाँति वेग से आकाश में उड़ने लगे।

➤ द्वितीयः सर्गः ➤ (२)

रात्रि-आगमन की प्रतीक्षा—

स सागरमनाधृष्यमतिक्रम्य महाबलः।
त्रिकूटशिखरे लङ्कां स्थितां स्वस्थो ददर्श ह॥ १॥

अन्यों द्वारा अलंघ्य समुद्र को अपने बल एवं पराक्रम से पार करके स्वस्थ चित्त हो महाबली हनुमान् ने त्रिकूट पर्वत पर बसी हुई लंकापुरी को देखा।

समासाद्य च लक्ष्मीवाँल्लङ्कां रावणपालिताम्।
परिखाभिः सपद्माभिः सोत्पलाभिरलङ्कृताम्॥ २॥

रावण द्वारा पालित एवं रक्षित लंकापुरी के समीप पहुँचकर सौभाग्यशाली हनुमान् ने कमलों से परिपूर्ण तथा जलवाली खाइयों से घिरी हुई लङ्का को देखा।

सीतापहरणात्तेन रावणेन सुरक्षिताम्।
समन्ताद्विचरद्भिश्च राक्षसैः कामरूपिभिः॥ ३॥

सीता-हरण से शंकित होकर रावण ने लङ्का की विशेष रूप से निगरानी एवं रक्षा के लिए कामरूपी राक्षस नियुक्त कर दिये थे, जो चारों ओर घूम-घमकर पहरा दिया करते थे। (हनुमान् ने उनको भी देखा।)

काञ्चनेनावृतां रम्यां प्राकारेण महापुरीम्।
गृहैश्च गिरिसङ्काशैः शारदाम्बुदसन्निभैः॥ ४॥

पाण्डुराभिः प्रतोलीभिरुच्चाभिसंवृताम्।
अट्टालकशताकीर्णां पताकाध्वजमालिनीम्॥ ५॥

तोरणैः काञ्चनैर्दीप्तां लतापङ्क्तिविचित्रितैः।
ददर्श हनुमाँल्लङ्कां दिवि देवपुरीमिव॥ ६॥

स्वर्ण के रमणीक परकोटे से घिरी हुई, शरत्कालीन मेघों के समान श्वेत और पर्वत के समान ऊँचे-ऊँचे विशाल भवनों से सुशोभित, सफेद वर्ण की पक्की सड़कों और गलियों से युक्त, ध्वजा और पताकाओं से अलंकृत, सैकड़ों अट्टालिकाओं से परिपूर्ण, उत्तम तोरण और चमचमाते हुए काञ्चन निर्मित लता-पंक्तियों से परिपूर्ण देवताओं की देवपुरी=अमरावती के समान उस महापुरी लंका को हनुमान्‌जी ने देखा—

तां पुरीं तादृशीं दृष्ट्वा दुराधर्षां सुरासुरैः
हनुमांश्चिन्तायामास विनिःश्वस्य मुहुर्मुहः॥ ७॥

केनोपायेन पश्येयं मैथिलीं जनकात्मजाम्।
अदृष्टो राक्षसेन्द्रेण रावणेन दुरात्मना॥ ८॥

देव और असुरों से अलंघनीय उस लङ्कापुरी को देखकर हनुमान्‌जी बार-बार दीर्घ-निःश्वास छोड़ते हुए सोचने लगे—क्या उपाय करूँ कि मैं जनकनन्दिनी सीताजी को देख लूँ और दुरात्मा राक्षसराज रावण



की दृष्टि से बचा रहूँ।

न विनश्येत्कथं कार्यं रामस्य विदितात्मनः।
एकामेकस्तु पश्येयं रहिते जनकात्मजाम्॥ ९॥

मैं क्या करूँ जिससे लोकप्रसिद्ध श्रीराम का कार्य बिगड़ने न पाए और मैं एकान्त में अकेली जानकी के दर्शन कर लूँ।

मयि दृष्टे तु रक्षोभी रामस्य विदितात्मनः।
भवेद् व्यर्थमिदं कार्यं रावणानर्थमिच्छतः॥ १०॥

यदि राक्षसों ने मुझे देख लिया तो रावण को दण्ड देने के इच्छुक लब्धकीर्ति श्रीराम का सीता-अन्वेषण रूपी कार्य व्यर्थ हो जायेगा।

न हि शक्यं क्वचित्स्थातुमविज्ञातेन राक्षसैः।
अपि राक्षसरूपेण किमुतान्येन केनचित्॥ ११॥

यहाँ किसी स्थान पर राक्षसों से छिपकर कोई भी रह नहीं सकता। यहाँ तक कि राक्षसों का रूप धारण करने पर भी राक्षसों से छुटकारा नहीं मिल सकता, अन्य किसी रूप में रहने की तो बात ही क्या है?

वायुरप्यत्र नाज्ञातश्चरेदिति मतिर्मम।
न ह्यस्त्यविदितं किञ्चिद्राक्षसानां बलीयसाम्॥ १२॥

मैं समझता हूँ, यहाँ वायु भी गुप्त रूप से कोई कार्य करना चाहे तो नहीं कर सकता क्योंकि इस लंका में कोई भी ऐसी वस्तु नहीं है जो भीषण कर्म करनेवाले राक्षसों की दृष्टि से छिप सके।

इहाहं यदि तिष्ठामि स्वेन रूपेण संवृतः
विनाशमुपयास्यामि भर्तुरर्थश्च हीयते॥ १३॥

यदि मैं अपने वास्तविक रूप में इस स्थान पर ठहरता हूँ तो केवल स्वामी का कार्य ही नष्ट नहीं होगा, अपितु मैं भी मारा जाऊँगा।

तदहं स्वेन रूपेण रजन्यां ह्रस्वतां गतः।
लङ्कापुरीमभिगम्य द्रक्ष्यामि जनकात्मजाम्॥ १४॥

अच्छा मैं अपने असलीरूप में, परन्तु बौने के रूप में अपनी आकृति को छोटा बनाकर और रात्रि के समय लंका में प्रवेश कर सीताजी के दर्शन करूँगा।

इति निश्चित्य हनुमान् सूर्यस्यास्तमयं कपिः।
आचकाङ्क्षे तदा वीरो वैदेह्या दर्शनोत्सुकः॥ १५॥

अपने मन में ऐसा निश्चय करके सीताजी के दर्शन के लिए उत्सुक वीर हनुमान् सूर्यास्त होने की प्रतीक्षा करने लगे।

सूर्ये चास्तं गते रात्रौ देहं संक्षिप्य मारुतिः।
प्रविवेश पुरीं रम्यां सुविभक्तमहापथाम्॥ १६॥

सूर्य के अस्त होने पर रात्रि में हनुमान्जी ने अपने शरीर को छोटा कर विशाल राजमार्गों से युक्त रमणीय लंकापुरी में प्रवेश किया।

➤ तृतीयः सर्गः ➤ (३)

लङ्का राक्षसी का पराभव—

अथ सा हरिशार्दूलं प्रविशन्तं महाबलम्।
नगरी स्वेन रूपेण ददर्श पवनात्मजम्॥ १॥

जैसे ही कपिश्रेष्ठ, महाबली हनुमान् ने लङ्का नगरी में प्रवेश किया उसी समय लङ्का की अधिष्ठात्री रक्षिका जिसका नाम लङ्का था—ने हनुमान् को देखा।

सां तं हरिवरं दृष्ट्वा लङ्का वै कामरूपिणी।
मुञ्चमाना महानादमब्रवीत्पवनात्मजम्॥ २॥

कपिश्रेष्ठ हनुमान् को देखकर कामरूपधारिणी वह लङ्का रूपी राक्षसी भयंकर नाद करते हुए पवनपुत्र हनुमान्जी से बोली—

कस्त्वं केन च कार्येण इह प्राप्तो वनालये।
कथयस्वेह यत्तत्त्वं यावत्प्राणान्धरिष्यसि॥ ३॥

हे वनवासी वानर! तू कौन है? और यहाँ क्यों आया है? प्राणदण्ड से पूर्व ये सारी बातें तू ठीक-ठीक बता दे?

अथ तामब्रवीद्वीरो हनुमानग्रतः स्थिताम्।
कथयिष्यामि ते तत्त्वं यन्मां त्वं परिपृच्छसि॥ ४॥



अपने सामने खड़ी हुई उस लङ्का नामक राक्षसी से वीर हनुमान् बोले—तू मुझसे जो कुछ पूछ रही है मैं वह सब ठीक-ठीक बताऊँगा।

का त्वं विरूपनयना पुरद्वारेऽवतिष्ठसे।
किमर्थं चापि मां रुद्ध्वा निर्भर्त्सयसि दारुणा॥५॥

(पहले तुम यह तो बताओ कि) भयंकर नेत्रोंवाली तुम कौन हो जो इस नगरी के द्वार पर खड़ी हो? हे कर्कशभाषिणी! तुम मेरा मार्ग रोककर क्यों खड़ी हो और मुझे किसलिए डाँट रही हो?

हनुमद्वचनं श्रुत्वा लङ्का सा कामरूपिणी।
उवाच वचनं क्रुद्धा परुषं पवनात्मजम्॥६॥

हनुमान्‌जी के इन वचनों को सुनकर स्वच्छन्द रूप धारण करनेवाली वह लङ्का क्रुद्ध होकर यह कठोर वचन बोली—

अहं राक्षसराजस्य रावणस्य महात्मनः।
आज्ञाप्रतीक्षा दुर्धर्षा रक्षामि नगरीमिमाम्॥७॥

मैं राक्षसराज महात्मा रावण की आज्ञानुवर्तिनी, अजेय लङ्का नगरी की रक्षा करनेवाली रक्षिका हूँ।

न शक्यं मामवज्ञाय प्रवेष्टुं नगरी त्वया।
अद्य प्राणैः परित्यक्तः स्वप्स्यसे निहितो मया॥८॥

मेरी अवहेलना करके तू इस नगरी में प्रविष्ट नहीं हो सकता। यदि तूने मेरी अवहेलना की तो मेरे द्वारा मारा जाकर तू आज यहाँ भूमि पर शयन करेगा।

लङ्कायाः वचनं श्रुत्वा हनूमान्मारुतात्मजः।
आबभाषेऽथ मेधावी सत्त्वान् प्लवगर्षभः॥९॥

वानरश्रेष्ठ, बुद्धिमान् एवं बलवान् पवनपुत्र हनुमान्‌जी लङ्का की ये बातें सुनकर उससे बोले—

द्रक्ष्यामि नगरीं लङ्कां साट्टप्राकारतोरणाम्।
तदर्थमिह सम्प्राप्तः परं कौतूहलं हि मे॥१०॥

हे लंके! मैं अट्टालिकाओं, प्राकार=पर्वत के ऊपर बने हुए भवनों, तोरण-महराबी द्वार अथवा सिंहद्वारों से युक्त लंका नगरी को देखने के लिए आया हूँ। मुझे लंकापुरी को देखने का बड़ा कुतूहल है।

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा लङ्का सा कामरूपिणी।
भूय एव पुनर्वाक्यं बभाषे परुषाक्षरम्॥११॥

स्वच्छन्द रूपधारिणी लंकादेवी हनुमान् के इन वचनों को सुनकर कठोर शब्दों में पुनः हनुमान्‌जी से बोली—

मामनिर्जित्य दुर्बुद्धे राक्षसेश्वरपालिताम्।
न शक्यमद्य ते द्रष्टुं पुरीयं वानराधम॥१२॥

हे दुर्बुद्धे! हे वानराधम! राक्षसराज रावण द्वारा पालित एवं रक्षित इस नगरी को, मुझे पराजित किये बिना तू नहीं देख सकता।

ततः स हरिशार्दूलस्तामुवाच निशाचरीम्।
दृष्ट्वा पुरीमिमां भद्रे पुनर्यास्ये यथागतम्॥१३॥

लंका के ऐसा कहने पर कपिश्रेष्ठ हनुमान्‌जी ने उस निशाचरी से कहा—हे भद्रे! मैं इस नगरी को देखकर जहाँ से आया हूँ वहीं लौट जाऊँगा।

ततः कृत्वा महानादं सा वै लङ्का भयानकम्।
तलेन वानरश्रेष्ठं ताडयामास वेगिता॥१४॥

हनुमान्‌जी के बार-बार आग्रह करने पर राक्षसी लंका ने भयंकर नादकर कपिश्रेष्ठ हनुमान्‌जी के कसकर एक थप्पड़ मारा।

ततः स कपिशार्दूलो लङ्कया ताडितो भृशम्।
ननाद सुमहानादं वीर्यवान् पवनात्मजः॥१५॥
मुष्टिनाऽभिजघानैनां हनूमान् क्रोधमूर्छितः।
स्त्री चेति मन्यमानेन नातिक्रोधः स्वयं कृतः॥१६॥

लङ्का राक्षसी के हाथ से जोर का थप्पड़ खा महाशक्तिशाली पवनपुत्र हनुमान् ने महानाद किया और क्रुद्ध होकर लङ्का के एक घूँसा मारा, परन्तु यह स्त्री है ऐसा सोचकर हनुमान् ने बहुत क्रोध नहीं किया (अर्थात् हल्का-सा ही घूँसा जमाया।)

सा तु तेन प्रहारेण विह्वलाङ्गी निशाचरी।
पपात सहसा भूमौ विकृताननदर्शना॥१७॥

परन्तु विकराल मुखवाली वह राक्षसी उस हल्के-से घूँसे के प्रहार से ही विकल और लोट-पोट होकर



भूमि पर गिर पड़ी।

ततो वै भृशमुद्विग्ना लङ्का सा गद्गदाक्षरम्।
उवाचागर्वितं वाक्यं हनुमन्तं प्लवङ्गमम्॥ १८॥

तदनन्तर अत्यन्त विकल वह राक्षसी लङ्का गद्गदवाणी में अभिमान-रहित हो कपिवर हनुमान्‌जी से बोली—

प्रसीद सुमहाबाहो त्रायस्व हरिसत्तम।
समये सौम्य तिष्ठन्ति सत्त्ववन्तो महाबलाः॥ १९॥

हे कपिश्रेष्ठ! हे महाबली! मेरे ऊपर कृपा करो और मुझे बचाओ। बुद्धिमान् और बलशाली पुरुष स्त्री का वध नहीं करते।

निर्जिताऽहं त्वया वीर विक्रमेण महाबल।
तत्प्रविश्य हरिश्रेष्ठ पुरीं रावणपालिताम्।
विधत्स्व सर्वकार्याणि यानि यानीह वाञ्छसि॥ २०॥

हे बलशालिन्! तुमने अपने पराक्रम से मुझे जीत लिया है, अतः हे कपिश्रेष्ठ! अब तुम रावण द्वारा पालित इस नगरी में प्रवेश करो और जो कुछ करना चाहते हो स्वच्छन्दता-पूर्वक करो।

❮ चतुर्थः सर्गः ❯ (४)

हनुमान् का लङ्कापुरी में प्रवेश—

स निर्जित्य पुरीं श्रेष्ठां लङ्कां तां कामरूपिणीम्।
विक्रमेण महातेजा हनुमान् कपिसत्तमः॥ १॥
अद्वारेण महाबाहुः प्राकारमभिपुप्लुवे।
निशि लङ्कां महासत्त्वो विवेश कपिकुञ्जरः॥ २॥

महाशक्तिशाली, दीर्घ भुजाओंवाले, महातेजस्वी, वानरश्रेष्ठ हनुमान्‌जी ने अपने पराक्रम से लङ्कापुरी की रक्षिका स्वच्छन्द रूपधारिणी राक्षसी लङ्का को जीतकर सिंहद्वार-प्रधान प्रवेश द्वार से न जाकर,[१] परकोटे की दीवार को फाँदकर रात्रि के समय लंका में प्रवेश किया।

प्रविष्टः सत्त्वसम्पन्नो निशायां मारुतात्मजः।
स महापथमास्थाय मुक्तापुष्पविराजितम्॥ ३॥

इस प्रकार महापराक्रमी पवनपुत्र हनुमान्‌जी रात्रि के समय लंका में प्रविष्ट होकर उस विशाल राजमार्ग पर गमन करने लगे जिस पर खिले हुए पुष्प बिछाये हुए थे।

ततस्तु तां पुरीं लङ्कां रम्यामभिययौ कपिः।
हसितोत्कृष्टनिनदैस्तूर्यघोषपुरःसरैः॥ ४॥

उस रमणीक लंकापुरी में चलते हुए हनुमान्‌जी ने देखा कि कहीं तो गृहस्थों के भवन अट्टहास के उत्कृष्ट नादों से निनादित हो रहे हैं और कहीं वाद्य-यन्त्रों के घोषों से परिपूर्ण हो रहे हैं।

शुश्राव जपतां तत्र मन्त्रान्रक्षोगृहेषु वै।
स्वाध्यायनिरतांश्चैव यातुधानान्ददर्श सः॥ ५॥

उन राक्षस-घरों में हनुमान्‌जी ने यत्र-तत्र वेद-मन्त्रों का पाठ करते हुए राक्षसों की ध्वनि सुनी तथा वेद के स्वाध्याय में निरत राक्षसों को भी देखा।

ददर्श मध्यमे गुल्मे राक्षसस्य चरान् बहून्।
दीक्षिताञ्जटिलान्मुण्डान् गोऽजिनाम्बरवाससः॥ ६॥

नगर के मध्य सैनिकों की जो छावनी थी उसमें हनुमान्‌जी ने राक्षसराज रावण के अनेक गुप्तचरों को देखा। इनमें कोई दीक्षित=गृहस्थ मुण्डित संन्यासी के रूप में था, कोई गोचर्म धारण करनेवाला था,

१. हनुमानजी द्वार से लंका में प्रविष्ट नहीं हुए। इसका एक कारण तो यह था कि वे पहरेदारों की दृष्टि से बचना चाहते थे। दूसरा कारण महाभारतकार ने दिया—

अद्वारेण रिपोर्गेहं द्वारेण सुहृदो गृहान्।

—महा० सभा० २१।५३

शत्रु के घर में तोड़-फोड़ करके प्रवेश करे द्वार से न जाए और मित्र के घर में द्वार से प्रवेश करे। रावण शत्रु था, अतः हनुमान्‌जी परकोटा फाँदकर अन्दर गये थे।



कोई मृगचर्म धारण करनेवाला और कई बिल्कुल नग्न था।

धन्विनः खड्गिनश्चैव शतघ्नीमुसलायुधान्।
परिघोत्तमहस्तांश्च ददर्श विविधायुधान्॥ ७॥

धनुषधारी, खड्गधारी, शतघ्नी=तोपधारी, मूसलधारी, उत्तम परिघों को हाथ में लिये हुए तथा अनेक प्रकार के आयुधों को धारण करनेवाले सैनिकों को भी हनुमान्जी ने देखा।

रक्षोऽधिपतिनिर्दिष्टं ददर्शान्तःपुराग्रतः।
स तदा तद् गृहं दृष्ट्वा महाहाटकतोरणम्॥ ८॥
राक्षसेन्द्रस्य विख्यातमद्रिमूर्ध्नि प्रतिष्ठितम्।
पुण्डरीकावतंसाभिः परिखाभिः समावृतम्॥ ९॥
प्राकारावृतमत्यन्तं ददर्श स महाकपिः।
त्रिविष्टपनिभं दिव्यं दिव्यनादविनादितम्॥ १०॥

आगे चलकर हनुमान्जी ने देखा कि रावण की आज्ञानुसार अन्तःपुर के समक्ष सैनिकों का पहरा है। उस गृह को देखकर हनुमान्जी ने स्वर्ण निर्मित द्वारवाले, पर्वत के शिखर पर बसे हुए राक्षसराज रावण के उस महल को, जो श्वेत कमलों से परिपूर्ण खाइयों से घिरा हुआ और ऊँची चहारदीवारी से आवेष्टित था, देखा। वह भवन स्वर्ग के समान सुन्दर एवं अलौकिक था। उस भवन में दिव्य सङ्गीत की ध्वनि गूँज रही थी।

वाजिहेषितसंघुष्टं नादितं भूषणैस्तथा।
रथैर्यानैर्विमानैश्च तथा गजहयैः शुभैः॥ ११॥
वारणैश्च चतुर्दन्तैः श्वेताभ्रनिचयोपमैः।
भूषितं रुचिरद्वारं मत्तैश्च मृगपक्षिभिः॥ १२॥
रक्षितं सुमहावीर्यातुधानैः सहस्रशः।
राक्षसाधिपतेर्गुप्तमाविवेश गृहं कपिः॥ १३॥

जिस भवन के द्वार पर घोड़े हिनहिना रहे थे, जहाँ घोड़ों पर पड़े आभूषणों की झंकार हो रही थी, जिस भवन के द्वार पर नाना प्रकार के रथादि यान, विमान, उत्तम नस्ल के हाथी और घोड़े समान सुभूषित बड़े डील-डौलवाले सफेद चार दाँत[१]वाले हाथी तथा प्रफुल्लित पशु और पक्षियों से सुशोभित था, सहस्त्रों महाबली और पराक्रमी राक्षस जिस राजभवन की रखवाली के लिए नियुक्त थे— ऐसे राजभवन में हनुमान्जी ने प्रवेश किया।

➤ पञ्चमः सर्गः ➤ (५)

हनुमान् का राजभवन में सीता-अन्वेषण और मन्दोदरी को सीता समझना—

तस्यालयवरिष्ठस्य मध्ये विपुलमायतम्।
ददर्श भवनश्रेष्ठं हनुमान्मारुतात्मजः॥ १॥

उस उत्तम राजप्रासाद के मध्य हनुमान्जी ने एक स्वच्छ एवं निर्मल तथा विशाल भवन को देखा।

मार्गमाणस्तु वैदेहीं सीतामायतलोचनाम्।
सर्वतः परिचक्राम हनुमानरिसूदनः॥ २॥

विशाल नेत्रोंवाली सीता को खोजते हुए शत्रुओं का संहार करनेवाले हनुमान् उस भवन में सर्वत्र घूमे।

तत्र दिव्योपमं मुख्यं स्फाटिकं रत्नभूषितम्।
अवेक्षमाणो हनुमान्ददर्श शयनासनम्॥ ३॥

---

१. आज के वैज्ञानिकों को आज से तीन शती पूर्व चार दाँतवाले हाथियों का ज्ञान नहीं था। ये चार दाँतवाले हाथी आज से ढाई करोड़ वर्ष से लेकर पचपन लाख वर्ष पूर्व तक अफ्रीका आदि में पाये जाते थे। रामायण श्रीराम का समकालीन इतिहास है। महर्षि वाल्मीकि तीन दाँत और चार दाँतवाले हाथियों से परिचित थे, अतः रामायण की इस अन्तःसाक्षी के आधार पर रामायण काल नौ लाख वर्ष से भी प्राचीन सिद्ध होता है।



उस भवन में इधर-उधर देखने पर हनुमान्‌जी ने एक स्थान पर स्फटिक से निर्मित और विविध रत्नों से विभूषित एक सुन्दर पलंग देखा।

पीत्वाऽप्युपरतं चापि ददर्श स महाकपिः।
भास्वरे शयने वीरं प्रसुप्तं राक्षसाधिपम्॥ ४॥

मद्यपान एवं स्त्रियों के साथ क्रीड़ा से तृप्त होकर देदीप्यमान पलङ्ग पर सोये हुए वीर राक्षसराज रावण को भी हनुमान्‌जी ने देखा।

काञ्चनाङ्गदनद्धौ च ददर्श स महात्मनः।
विक्षिप्तौ राक्षसेन्द्रस्य भुजाविन्द्रध्वजोपमौ॥ ५॥

बाजूबन्दों से अलंकृत, इन्द्र-ध्वजा के समान शोभायमान, राक्षसराज, रावण की फैली हुई दोनों भुजाओं[१] को भी हनुमान्‌जी ने देखा।

तस्य राक्षससिंहस्य निश्चक्राम महामुखात्।
शयानस्य विनिःश्वासः पूरयन्निव तद् गृहम्॥ ६॥

राक्षसराज रावण के महामुख[२] से श्वास-प्रश्वास के द्वारा निकलनेवाली गन्ध उस भवन को परिपर्णू कर रही थी।

पादमूलगताश्चापि दर्श सुमहात्मनः।
पत्नीः स प्रियभार्यस्य तस्य रक्षःपतेर्गृहे॥ ७॥

स्त्रियों के प्रिय उस राक्षसराज रावण के भवन में रावण के पैताने=उसके चरणों के समीप पड़ी हुईं उसकी स्त्रियों को भी महात्मा हनुमान् ने देखा।

शशिप्रकाशवदनाश्चारुकुण्डलभूषिताः ।
अम्लानमाल्याभरणा ददर्श हरियूथपः॥ ८॥

कपिश्रेष्ठ हनुमान्‌जी ने देखा कि उन स्त्रियों के मुखमण्डल चन्द्रमा के समान चमचमा रहे थे, उत्तम कुण्डल उनके कानों की शोभा बढ़ा रहे थे और उनके गलों में बिना कुम्हलाए ताजे फूलों की मालाएँ पड़ी हुई थीं।

मदव्यायामखिन्नास्ता राक्षसेन्द्रस्य योषितः।
तेषु तेष्ववकाशेषु प्रसुप्तास्तनुमध्यमाः॥ ९॥

मद्य के नशे में चूर और नाच-गाने से थक कर राक्षसराज रावण की वे स्त्रियाँ, जिसे जहाँ स्थान मिला वहीं पड़कर सो रही थीं।

तासामेकान्तविन्यस्ते शयानां शयने शुभे।
ददर्श रूपसम्पन्नामपरां स कपिः स्त्रियम्॥ १०॥

अन्त में उन स्त्रियों से अलग, एक सुन्दर पलंग पर सोई हुई अपूर्व रूपयौवनशालिनी स्त्री को हनुमान्‌जी ने देखा।

मुक्तामणिसमायुक्तैर्भूषणैः सुविभूषिताम्।
विभूषयन्तीमिव तत्स्वश्रिया भवनोत्तमम्॥ ११॥

मणियों और मोतियों से युक्त, आभूषणों से अलंकृत वह देवी अपने सौन्दर्य और आभूषणों से उस भवन को प्रकाशित कर रही थी।

गौरीं कनकवर्णाङ्गीमिष्टामन्तः पुरेश्वरीम्।
कपिर्मन्दोदरीं तत्र शयानां चारुरूपिणीम्॥ १२॥

गौरवर्णवाली, स्वर्ण के समान शरीर की कान्तिवाली, रावण की प्यारी, अन्तःपुर की महारानी, परमसुन्दरी मन्दोदरी को जो वहाँ सोई पड़ी थी—हनुमान्‌जी ने देखा।

स तां दृष्ट्वा महाबाहुर्भूषितां मारुतात्मजः।
तर्कयामास सीतेति रूपयौवनसम्पदा।
हर्षेण महता युक्तो ननन्द हरियूथपः॥ १३॥

महाबाहु पवनपुत्र हनुमान् ने सर्वाभरणभूषित मन्दोदरी के लावण्य और यौवन को देखकर उसे सीता समझ लिया और वे हर्ष से प्रफुल्लित हो गये।

---

१. रावण के दशमुख और बीस भुजाएँ बताई जाती हैं, परन्तु यहाँ रावण के केवल दो ही भुजाएँ बताई गई हैं। संस्कृत श्लोक में ''भुजौ'' पद से दो भुजाएँ ही सिद्ध होती हैं।

२. यहाँ रावण के एक ही मुख का वर्णन किया गया है। श्लोक में पद है '**महामुखात्**'। यदि रावण के अनेक सिर होते तो **महामुखात्** के स्थान पर **महामुखेभ्यः** पद होता।



≺ षष्ठः सर्गः ≻ (६)

पानभूमि-अन्वेषण—

अवधूय च तां बुद्धिं बभूवावस्थितस्तदा।
जगाम चापरां चिन्तां सीतां प्रति महाकपिः॥ १॥

थोड़ी देर पश्चात् हनुमान्‌जी ने पूर्व-निर्धारित 'मन्दोदरी ही सीता है'—इस विचारधारा को बदल दिया। वे स्थिर होकर बैठ गये और सीताजी के विषय में अन्य प्रकार की चिन्ता करने लगे।

न रामेण वियुक्ता सा स्वप्तुमर्हति भामिनी।
न भोक्तुं नाप्यलङ्कर्तुं न पानमुपसेवितुम्॥ २॥

(वे मन-ही-मन सोचने लगे) पतिव्रता सीता श्रीराम के वियोग में न तो इस प्रकार सो सकती हैं, न खा-पी सकती हैं, न शृंगार कर सकती हैं, और न सीता मद्यपान ही कर सकती हैं।

अन्येयमिति निश्चित्य भूयस्तत्र चचार सः।
पानभूमौ हरिश्रेष्ठः सीतासंदर्शनोत्सुकः॥ ३॥

'यह कोई और स्त्री है'—ऐसा निश्चय कर कपिश्रेष्ठ हनुमान् सीता के दर्शन की अभिलाषा से पुनः उस पान-भूमि में विचरने लगे।

तत्र सर्वमशेषेण रावणान्तःपुरं कपिः।
ददर्श सुमहातेजा न ददर्श च जानकीम्॥ ४॥

महातेजस्वी हनुमान् ने रावण के उस सम्पूर्ण अन्तःपुर को अच्छी तरह देखा, परन्तु उन्हें कहीं भी सीताजी दिखाई नहीं पड़ीं।

निरीक्षमाणश्च तदा ताः स्त्रियः स महाकपिः।
जगाम महतीं चिन्तां धर्मसाध्वसशङ्कितः॥ ५॥

उन सब स्त्रियों को देखने से हनुमान्‌जी के मन में धर्मलोप की आशंका से महती चिन्ता उत्पन्न हो गई।

परदारावरोधस्य प्रसुप्तस्य निरीक्षणम्।
इदं खलु ममात्यर्थं धर्मलोपं करिष्यति॥ ६॥

उन्होंने सोचा—स्त्रियों के अन्तःपुर में जाना और सोती हुई स्त्रियों को देखना—मेरा यह कर्म मेरे धर्मार्जित पुण्य को नष्ट कर देगा।

न हि मे परदाराणां दृष्टिर्विषयवर्तिनी।
अयं चात्र मया दृष्टः परदारपरिग्रहः॥ ७॥

यद्यपि पर-स्त्रियों को देखते हुए मेरी दृष्टि विषय-वासना से युक्त नहीं थी फिर भी मैंने पराई स्त्रियों को देखा तो है।

तस्य प्रादुरभूच्चिन्ता पुनरन्या मनस्विनः।
निश्चितैकान्तचित्तस्य कार्यनिश्चयदर्शिनी॥ ८॥

इस प्रकार एकाग्रचित्त होकर सोचते-सोचते हनुमान्‌जी के मन में कर्तव्य का निश्चय करानेवाला एक दूसरा निश्चित विचार उत्पन्न हुआ—

कामं दृष्टा मया सर्वा विश्वस्ताः रावणस्त्रियः
न हि मे मनसा किञ्चिद्वैकृत्यमुपपद्यते॥ ९॥

ठीक है, मैंने रावण की इन सभी स्त्रियों को निश्चिन्त अवस्था में सोते हुए देखा है, परन्तु इनके दर्शन से मेरे मन में किसी प्रकार का कोई विकार उत्पन्न नहीं हुआ।

मनो हि हेतुः सर्वेषामिन्द्रियाणां प्रवर्तने।
शुभाशुभास्ववस्थासु तच्च मे सुव्यवस्थितम्॥ १०॥

इन्द्रियों को शुभ और अशुभ कार्यों में प्रेरित करने के लिए मन प्रधान कारण माना गया है, वह मन मेरे वश में है, अतः मुझे सोती हुई पराई स्त्रियों को देखने का पाप नहीं लग सकता।

नान्यत्र हि मया शक्या वैदेही परिमार्गितुम्।
स्त्रियो हि स्त्रीषु दृश्यन्ते सर्वथा परिमार्गणे॥ ११॥

इसके अतिरिक्त मैं सीता को ढूँढ़ भी कहाँ सकता था क्योंकि ढूँढ़ने के समय स्त्रियाँ स्त्रियों में ही खोजी जा सकती हैं।

यस्य सत्त्वस्य या योनिस्तस्यां तत्परिमृग्यते।
न शक्या प्रमदा नष्टा मृगीषु परिमार्गितुम्॥ १२॥



जिस प्राणी की जो जाति होती है वह प्राणी उसी जाति में खोजा जाता है। कोई खोई हुई स्त्री मृगियों के समूह में नहीं खोजी जाती।

तदिदं मार्गितं तावच्छुद्धेन मनसा मया।
रावणान्तःपुरं सर्वं दृश्यते न च जानकी॥ १३॥

मैंने सीताजी को खोजते हुए, शुद्धान्तःकरण से रावण के सम्पूर्ण अन्तःपुर को ढूँढ़ डाला, परन्तु मुझे सीताजी कहीं भी दिखाई नहीं पड़ीं।

तामपश्यन्कपिस्तत्र पश्यंश्चान्या वरस्त्रियः।
आपानभूमिमुत्सृज्य तां विचेतुं प्रचक्रमे॥ १४॥

अन्य श्रेष्ठ स्त्रियों को देखते हुए भी सीता को वहाँ न देखकर हनुमान्‌जी मान-भूमि को छोड़कर अन्य स्थानों में सीताजी की खोज करने में प्रवृत्त हुए।

➤ सप्तमः सर्गः ➤ (७)

हनुमान् का विषाद—

दृष्टमन्तःपुरं सर्वं दृष्टा रावणयोषितः।
न सीता दृश्यते साध्वी वृथा जातो मम श्रमः॥ १॥

(हनुमान् मन-ही-मन सोचने लगे) मैंने रावण का सम्पूर्ण अन्तःपुर देख डाला, राक्षसराज रावण की सभी स्त्रियों को भी देख लिया, परन्तु सती-साध्वी सीता के दर्शन नहीं हुए, अतः मेरा सारा परिश्रम मिट्टी में मिल गया।

किं नु मां वानराः सर्वे गतं वक्ष्यन्ति सङ्गताः।
गत्वा तत्र त्वया वीर किं कृतं तद्वदस्व नः॥ २॥

यहाँ से लौटकर जाने पर जब मेरे वानर साथी मुझसे पूछेंगे—हे वीर! तुमने वहाँ जाकर क्या किया, हम लोगों को बताओ—तब मैं उनसे क्या कहूँगा।

अनिर्वेदः श्रियो मूलमनिर्वेदः परं सुखम्।
अनिर्वेदो हि सततं सर्वार्थेषु प्रवर्तकः॥ ३॥

(इस प्रकार निराश और हताश होकर भी हनुमान्‌जी ने मन-ही-मन में सोचा—मुझे हतोत्साह नहीं होना चाहिए क्योंकि) उत्साह ही कार्यसिद्धि की कुञ्जी है, उत्साह ही परम सुख का देनेवाला है, उत्साह ही मनुष्य को कार्यों में प्रवृत्त करनेवाली है।

इति सञ्चिन्त्य भूयोऽपि विचेतुमुपचक्रमे।
भूमीगृहांश्चैत्यगृहान् गृहातिगृहकानपि॥ ४॥
उत्पतन्निपतंश्चापि तिष्ठन्गच्छन्पुनः पुनः।
सर्वमप्यवकाशं स विचचार महाकपिः॥ ५॥

अपने मन में ऐसा निश्चय कर हनुमान्‌जी सीता को ढूँढ़ने में पुनः प्रवृत्त हुए। वे भूमिगृह (तहखाने) मण्डपगृह और एकान्त में बने हुए घरों मे ऊपर-नीचे सर्वत्र ढूँढ़ने लगे। कभी वे ऊपर-चढ़ जाते, कभी चल पड़ते। इस प्रकार उन्होंने सम्पूर्ण स्थानों में सीता को खोजा।

सम्परिक्रम्य हनुमान्रावणस्य निवेशनम्।
अदृष्ट्वा जानकीं सीतामब्रवीद्वचनं कपिः॥ ६॥

रावण के उस राजमहल में चारों ओर घूम-फिरकर खोजने पर भी जब हनुमान् को सीताजी दिखाई न दीं तो वे मन-ही-मन में कहने लगे—

भूयिष्ठं लोलिता लङ्का रामस्य चरता प्रियम्।
नहि पश्यामि वैदेहीं सीतां सर्वाङ्गशोभनाम्॥ ७॥

श्रीराम का प्रिय कार्य करने की इच्छा से मैंने सम्पूर्ण लङ्कापुरी को दुबारा देख डाला फिर भी मैं सर्वाङ्गसुन्दरी सीताजी को नहीं देख पाया।

इह सम्पातिना सीता रावणस्य निवेशने।
आख्याता गृध्रराजेन न च पश्यामि तामहम्॥ ८॥

गृध्रराज सम्पाति ने कहा था कि सीता रावण के महल में है, परन्तु यहाँ तो वह दिखाई नहीं देती।

किन्नु सीताथ वैदेही मैथिली जनकात्मजा।
उपतिष्ठेत विवशा रावणेन हृता बलात्॥ ९॥

रावण के द्वारा बलपूर्वक हरण की गई सीता ने कहीं विवश होकर रावण को स्वीकार तो नहीं कर



लिया ? नहीं, नहीं ऐसा नहीं हो सकता क्योंकि सीता सम्भ्रान्त कुलोत्पन्न विदेहराज जनक की सुपुत्री है।

उपर्युपरि वा नूनं सागरं क्रमतस्तदा।
विचेष्टमाना पतिता समुद्रे जनकात्मजा॥ १०॥

जिस समय रावण आर्या सीता को आकाश-मार्ग से ले जा रहा था उस समय छटपटाती हुई सीता निश्चय ही समुद्र में गिर गई होगी।

हा राम लक्ष्मणेत्येवं हऽयोध्ये चेति मैथिली।
विलप्य बहु वैदेही न्यस्तदेहा भविष्यति॥ ११॥

अथवा, हा राम! हा लक्ष्मण! हा अयोध्या! इस प्रकार कहकर विलाप करती हुई सीता ने शरीर त्याग दिया होगा।

अथवा निहिता मन्ये रावणस्य निवेशने।
नूनं लालप्यते सीता पञ्जरस्थेव शारिका॥ १२॥

अथवा यह भी सम्भव है कि सीता को रावण के राजमहल में ही कहीं छिपाकर रखा गया हो और वह पिंजड़े में बन्द मैना की भाँति बार-बार राम नाम का जप कर रही हो।

जनकस्य सुता सीता रामपत्नी सुमध्यमा।
कथमुत्पलपत्राक्षी रावणस्य वशं व्रजेत्॥ १३॥

कुछ भी हो, क्षीण कटिवाली, कमलनयनी, महाराज जनक की पुत्री और श्रीराम की धर्मपत्नी सीता रावण के वश में कैसे हो सकती है?

विनष्टा वा प्रणष्टा वा मृता वा जनकात्मजा।
रामस्य प्रियभार्यस्य न निवेदयितुं क्षमम्॥ १४॥

अस्तु, चाहे रावण ने सीता को कैद कर रखा हो, चाहे वह समुद्र में गिरकर नष्ट हो गई हो अथवा वह स्वयं मर गई हो, परन्तु सीता से स्नेह करनेवाले राम के समक्ष मैं इनमें से एक भी बात नहीं कह सकता।

अस्मिन्नेवं गते कार्ये प्राप्तकालं क्षमं च किम्।
भवेदिति मतिं भूयो हनुमान् प्रविचारयन्॥ १५॥

ऐसी विषम परिस्थिति वाले कार्य में या अनिश्चित अवस्था में क्या किया जाए अब हनुमान्‌जी इस पर विचार करने लगे—

यदि सीतामदृष्ट्वाहं वानरेन्द्रपुरीमितः।
गमिष्यामि ततः को मे पुरुषार्थो भविष्यति॥ १६॥

यदि मैं सीता को बिना देखे ही यहाँ से वानर राज सुग्रीव की किष्किन्धा पुरी को लौट चलूँ तो इसमें मेरा पुरुषार्थ ही क्या होगा?

गत्वा तु यदि काकुत्स्थं वक्ष्यामि परमप्रियम्।
न दृष्टेति मया सीता ततस्त्यक्ष्यति जीवितम्॥ १७॥

वहाँ जाकर यदि मैं श्रीराम के समक्ष यह हृदयविदारक अप्रिय वचन कहूँगा कि मैंने सीता को नहीं देखा तो वे तत्क्षण अपने प्राण त्याग देंगे।

तं तु कृच्छ्रगतं दृष्ट्वा पञ्चत्वगतमानसम्।
भृशानुरक्तो मेधावी न भविष्यति लक्ष्मणः॥ १८॥

इस प्रकार श्रीराम को विपत्ति में पड़े हुए और प्राण त्यागने के लिए समुद्यत देखकर भ्रातृवत्सल मेधावी लक्ष्मणजी भी जीवित नहीं रहेंगे।

विनष्टौ भ्रातरौ श्रुत्वा भरतोऽपि मरिष्यति।
भरतं च मृतं दृष्ट्वा शत्रुघ्नो न भविष्यति॥ १९॥

दोनों भाइयों की मृत्यु के दुःखद समाचार को सुनकर भरतजी भी प्राण त्याग देंगे और भरत को मरा हुआ देखकर शत्रुघ्न भी जीवित नहीं रह सकेंगे।

पुत्रान्मृतान्समीक्ष्याथ न भविष्यन्ति मातरः।
कौसल्या च सुमित्रा च कैकेयी च न संशयः॥ २०॥

अपने पुत्रों को मरा हुआ देखकर इनकी माताएँ कौसल्या, सुमित्रा और कैकेयी भी मर जायेंगी, इसमें कोई सन्देह नहीं है।

कृतज्ञः सत्यसन्धश्च सुग्रीवः प्लवगाधिपः।
रामं तथागतं दृष्ट्वा ततस्त्यक्ष्यति जीवितम्॥ २१॥

राम को मरा हुआ देखकर कृतज्ञ एवं सत्यप्रतिज्ञ वानरराज सुग्रीव भी अपने प्राण त्याग देंगे।

दुर्मना व्यथिता दीना निरानन्दा तपस्विनी।
पीडिता भर्तृशोकेन रुमा त्यक्ष्यति जीवितम्॥ २२॥

तब दुःखिया, मर्माहत, दीन, आनन्द-रहित, तपस्विनी रुमा देवी पतिशोक से पीड़ित होकर अपने प्राण त्याग देगी।



बालिजेन तु दुःखेन पीडिता शोककर्शिता।
पञ्चत्वं च गते राज्ञी तारापि न भविष्यति॥ २३॥

अपने पति बाली के मारे जाने के दुःख से पीड़ित और शोक से विकल तारा उसी समय मरने को तैयार थी, अब सुग्रीव के मर जाने पर वह कभी भी जीवित न बच सकेगी।

मातापित्रोर्विनाशेन सुग्रीवव्यसनेन च।
कुमारोऽप्यङ्गदः कस्माद्धारयिष्यति जीवितम्॥ २४॥

माता-पिता और सुग्रीव के मारे जाने पर युवराज अङ्गद भी कैसे जीवित रह सकेगा?

भर्तृजेन तु दुःखेन ह्यभिभूता वनौकसः।
लालिताः कपिराजेन प्राणांस्त्यक्ष्यन्ति वानराः॥ २५॥

अपने स्वामी सुग्रीव को मरा हुआ देखकर कपिराज सुग्रीव द्वारा लालित और पालित वनवासी वानरगण अत्यन्त दुःखी होकर अपने प्राण त्याग देंगे।

सपुत्रदाराः सामात्या भर्तृव्यसनपीडिताः।
शैलाग्रेभ्यः पतिष्यन्ति समेषु विषमेषु च॥ २६॥

अपने स्वामी के शोक से सन्तप्त होकर अपने पुत्र, स्त्री और मन्त्रियों को साथ लेकर वानरगण पर्वत शिखरों पर चढ़, ऊबड़-खाबड़ भूमि में गिरकर अपने प्राण त्याग देंगे।

घोरमारोदनं मन्ये गते मयि भविष्यति।
इक्ष्वाकुकुलनाशश्च नाशश्चैव वनौकसाम्॥ २७॥

मैं समझता हूँ मेरे किष्किन्धा लौट जाने पर वहाँ भयंकर हाहाकार मच जायेगा क्योंकि मेरे जाते ही इक्ष्वाकुकुल और वानरकुल का नाश निश्चित है।

सोऽहं नैव गमिष्यामि किष्किन्धां नगरीमितः।
वानप्रस्थो भविष्यामि ह्यदृष्ट्वा जनकात्मजाम्॥ २८॥

अतः मैं यहाँ से लौटकर किष्किन्धा नहीं जाऊँगा। यदि मुझे सीताजी के दर्शन नहीं हुए तो मैं वानप्रस्थ धारण कर लूँगा।

इति चिन्तां समापन्नः सीतामनधिगम्य ताम्।
ध्यानशोकपरीतात्मा चिन्तयामास वानरः॥ २९॥

इस प्रकार सोच-विचार में डूबा हुआ हनुमान् सीता को न पाकर ध्यान और शोक में डूबकर विचार करने लगा।

अशोकवनिका चेयं दृश्यते महाद्रुमा।
इमामभिगमिष्यामि न हीयं विचिता मया॥ ३०॥

अरे! बड़े-बड़े विशाल वृक्षोंवाली अशोकवाटिका दृष्टिगोचर हो ही है, इसमें तो मैंने सीता को खोजा ही नहीं, अतः अब मैं इसमें जाऊँगा।

◀ अष्टमः सर्गः ▶ (८)

अशोकवाटिका में पहुँचकर सीता को खोजना—

स प्रविश्य विचित्रां तां विहगैरभिनादिताम्।
राजतैः काञ्चनैश्चैव पादपैः सर्वतो वृताम्॥ १॥

उस अद्भुत अशोकवाटिका में पहुँचकर हनुमान् ने देखा कि वह पक्षियों के कलरव से निनादित हो रही है तथा सोने और चाँदी के समान चमकनेवाले वृक्षों से वह चहुँओर से घिरी हुई है।

वृतां नानाविधैर्वृक्षैः पुष्पोपगफलोपगैः।
कोकिलैर्भृङ्गराजैश्च मत्तैर्नित्यनिषेविताम्॥ २॥

हनुमान्‌जी ने देखा कि अशोकवाटिका में विविध प्रकार के फलों और फूलों के वृक्ष हैं तथा उन वृक्षों पर मतवाली कोयलें कूक रही हैं और भौंरे गुञ्जार कर रहे हैं।

वृक्षेभ्यः पतितैः पुष्पैरवकीर्णा पृथग्विधैः।
रराज वसुधा तत्र प्रमदेव विभूषिता॥ ३॥



नानाप्रकार के वृक्षों से गिरे हुए फूलों से ढककर वहाँ की भूमि शृंगार की हुई स्त्री के समान सुशोभित हो रही थी।

वापीश्च विविधाकाराः पूर्णा परमवारिणा।
महार्हैर्मणिसोपानैरुपपन्नास्ततस्ततः॥ ४॥

उस वाटिका में सुस्वादु उत्तम जल से परिपूर्ण विविध आकार-प्रकार की अनेक बावलियाँ थीं। इन बावलियों के घाटों और सीढ़ियों में बहुमूल्य मणियाँ जड़ी हुई थीं।

ततोऽम्बुधरसङ्काशं प्रवृद्धशिखरं गिरिम्।
विचित्रकूटं कूटैश्च सर्वतः परिवारितम्॥ ५॥

उस वाटिका में मेघ के समान उच्च शिखरोंवाला एक कृत्रिम पर्वत भी था। यह पर्वत चित्र-विचित्र चोटियों से युक्त था और चारों ओर फैला हुआ था।

ददर्श च नगात्तस्मान्नदीं निपतितां कपिः।
अङ्कादिव समुत्पत्य प्रियस्य पतितां प्रियाम्॥ ६॥

उस पर्वत से निकलकर एक नदी बह रही थी हनुमान्‌जी को पर्वत से गिरती हुई वह नदी ऐसी प्रतीत हुई मानो वह प्रिय की गोद से गिरती हुई कोई प्रिया हो।

काञ्चनीं शिंशपामेकां ददर्श हनुमान् कपिः।
वृतां हेममयीभिस्तु वेदिकाभिः समन्ततः॥ ७॥

तत्पश्चात् हनुमान्‌जी ने स्वर्ण के समान चमकनेवाले एक शिंशप=अशोक वृक्ष को देखा। उसके चारों ओर बैठने के लिए स्वर्ण-वेदिकाएँ बनी हुई थीं।

तामारुह्य महाबाहुः शिंशपां पर्णसंवृताम्।
इतो द्रक्ष्यामि वैदेहीं रामदर्शनलालसाम्॥ ८॥

हनुमान्‌जी शिंशप वृक्ष पर चढ़ गये और उसके पत्तों में अपने आपको छिपा लिया तथा अपने मन में सोचने लगे कि कदाचित् राम के दर्शन के लिए उत्सुक मिथिलेश कुमारी सीता को मैं यहाँ देख सकूँ।

अशोकवनिका चेयं दृढं रम्या दुरात्मनः।
वनसञ्चारकुशला ध्रुवमेष्यति जानकी॥ ९॥

दुरात्मा रावण की यह अशोकवाटिका अत्यन्त रमणीक है और सीता वन-भ्रमण में बहुत कुशल है, अतः वह भ्रमण करती हुई यहाँ अवश्य आयेगी।

सन्ध्याकालमनाः श्यामा ध्रुवमेष्यति जानकी।
नदीं चेमां शिवजलां सन्ध्यार्थे वरवर्णिनी॥ १०॥

प्रातः और सायंकाल सन्ध्या करनेवाली, श्यामा= नवोढा तथा सुन्दर वर्णवाली सीता इस नदी के स्वच्छ जल में स्नानादि और सन्ध्या करने के लिए इस स्थान पर अवश्य आयेंगी।

यदि जीवति सा देवी ताराधिपनिभानना।
आगमिष्यति साऽवश्यमिमां शिवजलां नदीम्॥ ११॥

चन्द्रमा के समान मुखवाली वह देवी सीता यदि जीवित होंगी तो इस शीतल जलवाली नदी पर अवश्य आएँगी।

एवं तु मत्वा हनुमान्महात्मा
प्रतीक्षमाणो मनुजेन्द्रपत्नीम्।
अवेक्षमाणश्च ददर्श सर्वं
सुपुष्पिते पत्रघने निलीनः॥ १२॥

ऐसा सोचकर और फूले हुए शिंशप वृक्ष के सघन पत्तों में अपने आपको छिपाकर हनुमान्‌जी सीता के आने की प्रतीक्षा करते हुए अपनी दृष्टि को दौड़ाकर चारों ओर देखने लगे।

◀ नवमः सर्गः ▶ (९)

सीता के दर्शन और हनुमान् का सन्ताप—

अशोकवनिकायां तु तस्यां वानरपुङ्गवः।
स ददर्शाविदूरस्थं चैत्यप्रासादमुच्छ्रितम्॥ १॥

मध्ये स्तम्भसहस्रेण स्थितं कैलासपाण्डुरम्।
प्रवालकृतसोपानं तप्तकाञ्चनवेदिकम्॥ २॥

उस अशोक वाटिका में वानरश्रेष्ठ हनुमान् ने समीप



में ही एक ऊँचे उठे हुए गोलाकार भवन को देखा। उस भवन में एक सहस्र=खम्भे थे और उसका रङ्ग कैलास पर्वत के समान धवल था। उस भवन की सीढ़ियाँ मूँगे की तथा चबूतरे सोने के बने हुए थे।

विमलं प्रांशुभावत्वादुल्लिखन्तमिवाम्बरम्।
ततो मलिनसंवीतां राक्षसीभिः समावृताम्॥ ३॥
उपवासकृशां दीनां निःश्वसन्तीं पुनः पुनः।
ददर्श शुक्लपक्षादौ चन्द्ररेखामिवामलाम्॥ ४॥

वह भवन अत्यन्त निर्मल था और ऊँचाई में आकाश से बातें करता था। उस प्रासाद को देखते हुए हनुमान्‌जी ने मैले वस्त्रों से युक्त, राक्षसियों से घिरी हुई, उपवास करने से अत्यन्त दुर्बल, अत्यन्त दुःखी, बार-बार लम्बी साँस लेती हुई, शुक्लपक्ष के आरम्भ में द्वितीया की क्षीण चन्द्ररेखा के समान एक निर्मल स्त्री को देखा।

पीतेनैकेन संवीतां क्लिष्टेनोत्मवाससा।
सपङ्कामनलङ्कारां विपद्मामिव पद्मिनीम्॥ ५॥

वह एक पुरानी पीले रंग की उत्तम साड़ी पहने हुए थी। अलंकारों से रहित वह देवी पद्महीन कीचड़वाली बावड़ी के समान प्रतीत हो रही थी।

अश्रूपूर्णमुखीं दीनां कृशामनशनेन च।
शोकध्यानपरां दीनां नित्यं दुःखपरायणाम्॥ ६॥
तां समीक्ष्य विशालाक्षीं राजपुत्रीमनिन्दिताम्।
तर्कयामास सीतेति कारणैरुपपादिभिः॥ ७॥

आँसुओं से पूर्ण मुखवाली, अतिदीन, भोजन आदि न करने के कारण अत्यन्त दुर्बल, सदा शोकान्वित और चिन्तित तथा निरन्तर दुःख से परिपूर्ण, विशाल नेत्रोंवाली, अनिन्दिता राजकुमारी सीता को देखकर हनुमान्‌जी ने तर्क-वितर्क करके निश्चय किया कि यही सीता है।

एवं सीतां तदा दृष्ट्वा हृष्टः पवनसम्भवः।
जगाम मनसा रामं प्रशशंस च तं प्रभुम्॥ ८॥

इस प्रकार जनकनन्दिनी सीता को देखकर पवनपुत्र हनुमान् बहुत प्रसन्न हुए। वे मन के द्वारा राम के पास पहुँच गये अर्थात् राम का स्मरण करने लगे और बार-बार उनकी प्रशंसा करने लगे।

स मुहूर्तमिव ध्यात्वा बाष्पपर्याकुलेक्षणः।
सीतामाश्रित्य तेजस्वी हनुमान्विललाप ह॥ ९॥

थोड़ी देर तक राम के सम्बन्ध में सोचकर महातेजस्वी हनुमान् सीता के लिए विलाप करने लगे। और उनकी आँखें आँसुओं से पूर्ण हो गईं।

मान्या गुरुविनीतस्य लक्ष्मणस्य गुरुप्रिया।
यदि सीताऽपि दुःखार्ता कालो हि दुरतिक्रमः॥ १०॥

गुरुओं द्वारा सुशिक्षित अथवा गुरु के प्रति विनीत श्रीलक्ष्मण के ज्येष्ठ भ्राता श्रीराम की धर्मपत्नी सीता जब ऐसे कष्ट भोग रही है तब दूसरों का तो कहना ही क्या है? काल के प्रभाव का उल्लंघन करना सर्वथा दुःसाध्य है।

धर्मज्ञस्य कृतज्ञस्य रामस्य विदितात्मनः।
इयं सा दयिता भार्या राक्षसीवशमागता॥ ११॥

यह धर्म को जाननेवाले, किये हुए उपकार को माननेवाले और लोक-प्रसिद्ध श्रीराम की प्राणप्रिया पत्नी है, परन्तु इस समय काल के कुचक्र से यह बेचारी राक्षसियों के वश में आ पड़ी है।

सर्वान्भोगान्परित्यज्य भर्तृस्नेहबलात्कृता।
अचिन्तयित्वा दुःखानि प्रविष्टा निर्जनं वनम्॥ १२॥

अपने पति के प्रेम के वशीभूत होकर, सम्पूर्ण राजकीय सुख-भोगों को तिलाञ्जलि देकर तथा वन के दुःखों की रत्ती भर भी परवाह न कर यह निर्जन वन में चली आई।

सन्तुष्टा फलमूलेन भर्तृशुश्रूषणे रता।
या परां भजते प्रीतिं वनेऽपि भवने यथा॥ १३॥
सेयं कनकवर्णाङ्गी नित्यं सुस्मितभाषिणी।
सहते यातनामेतामनर्थानामभागिनी॥ १४॥

जो सीता फल-मूल खाकर सन्तुष्ट रहती थी जो सदा अपने पति की सेवा में लगी रहती थी जो राजमहल की भाँति वन में भी प्रसन्न रहती थी, जो सदा मुस्कराकर बात करती थी, जिसने कभी कष्ट



नहीं झेले वही स्वर्ण के सदृश वर्णवाली सीता आज इन महान् कष्टों और अनर्थों को भोग रही है।

अस्या नूनं पुनर्लाभाद्राघवः प्रीतिमेष्यति।
राजा राज्यात्परिभ्रष्टः पुनः प्राप्येव मेदिनीम्॥ १५॥

निश्चय ही सीता को पुनः प्राप्त कर श्रीराम उसी प्रकार प्रसन्न होंगे जिस प्रकार खोये हुए राज्य को प्राप्त करके सम्राट् प्रसन्न होता है।

कामभोगैः परित्यक्ता हीना बन्धुजनेन च।
धारयत्यात्मनो देहं तत्समागमलालसा॥ १६॥

राजकीय सुख-भोगों से वञ्चित और अपने प्रिय जनों से रहित यह सीता श्रीराम से मिलने की आशा से ही प्राणों को धारण किये हुए है।

नैषा पश्यति राक्षस्यो नेमान्पुष्पफलद्रुमान्।
एकस्थहृदया नूनं राममेवानुपश्यति॥ १७॥

यह सीता न तो अपने समीप रहनेवाली राक्षसियों को देखती है और न फूले-फूले इन वृक्षों की ओर देखती है। यह श्रीराम के प्रेम में मग्न होकर अपने हृदय में सदा राम को ही देखती है।

भर्ता नाम परं नार्या भूषणं भूषणादपि।
एषा विरहिता तेन भूषणार्हा न शोभते॥ १८॥

स्त्रियों के लिए पति ही उनका भूषण है, अपितु भूषण से भी बढ़कर है। शोभा के योग्य होने पर भी यह सीता पति-वियोग के कारण शोभा को प्राप्त नहीं हो रही है।

दुष्करं कुरुते रामो हीनो यदनया प्रभुः।
धारयत्यात्मनो देहं न दुःखेनावसीदति॥ १९॥

समर्थ श्रीराम सीताजी के वियोग में भी जीवित हैं। इस दुःख में अपने आपको संभाले हुए हैं, सचमुच वे बड़ा दुष्कर कार्य कर रहे हैं।

इमामसितकेशान्तां शतपत्रनिभेक्षणाम्।
सुखार्हां दुःखितां दृष्ट्वा ममापि व्यथितं मनः॥ २०॥

काले केशवाली, कमलनयनी और सुख भोगने योग्य इस जानकी को दुःखी देख मेरा कलेजा भी दुःख के मारे फटा जा रहा है।

इत्येवमर्थं कपिरन्ववेक्ष्य
सीतेयमित्येव निविष्टबुद्धिः।
संश्रित्य तस्मिन्निषसाद वृक्षे
बली हरीणमृषभस्तरस्वी॥ २१॥

इन सब बातों पर विचार करके—''ऐसी सीता है'' ऐसी निश्चित बुद्धि करके और अपना प्रयोजन सिद्ध हुआ देख महावीर, अत्यन्त वेगवान् कपिश्रेष्ठ हनुमान् उसी वृक्ष पर शान्ति पूर्वक बैठे रहे।

◀ दशमः सर्गः ▶ (१०)

रावण का अशोकवाटिका में आगमन—

तथा विप्रेक्षमाणास्य वनं पुष्पितपादपम्।
विचिन्वतश्च वैदेहीं किञ्चिच्छेषा निशाभवत्॥ १॥

पुष्पित वृक्षों से युक्त उस अशोक वाटिका को दुखते-देखते और सीता को खोजते-खोजते थोड़ी ही रात्रि शेष रह गई थी।

षडङ्गवेदविदुषां क्रतुप्रवरयाजिनाम्।
शुश्राव ब्रह्मघोषांश्च विरात्रे ब्रह्मरक्षसाम्॥ २॥

उषाकाल होने पर साङ्गोपाङ्ग वेदों के ज्ञाता और बड़े-बड़े यज्ञ करनेवाले वेदपाठी राक्षसों की वेद-ध्वनि को हनुमान्जी ने सुना।

अथ मङ्गलवादित्रैः शब्दैः श्रोत्रमनोहरैः।
प्राबुध्यत महाबाहुर्दशग्रीवो महाबलः॥ ३॥

उधर प्रातःकाल होने पर कर्णप्रिय और मन को आह्लादित करनेवाले मङ्गलसूचक वाद्यों की मधुर-ध्वनि से महाबाहु एवं महाबली रावण को जगाया गया।



विबुध्य तु यथाकालं राक्षसेन्द्रः प्रतापवान्।
स्रस्तमाल्याम्बरधरो वैदेहीमन्वचिन्तयत्॥ ४॥

महाभाग एवं महाप्रतापी रावण यथासमय जाग्रत् हो गये और उठते ही सोते समय खिसकी हुई अपनी मालाओं और वस्त्रों को सम्भालते हुए वे सीता के विषय में सोच-विचार करने लगे।

भृशं नियुक्तस्तस्यां च मदनेन मदोत्कटः।
न स तं राक्षसः कामं शशाकात्मनि गूहितुम्॥ ५॥

सीता के प्रति अत्यन्त आसक्त होने के कारण उसकी कामवासना उग्ररूप में उमड़ पड़ी थी। वह अपने काम-वेग को रोकने में सर्वथा असमर्थ था।

स सर्वाभरणैर्युक्तो बिभ्रच्छ्रियमनुत्तमाम्।
अशोकवनिकामेव प्राविशत्सन्ततद्रुमाम्॥ ६॥

अतः उसने आभूषणों से अलंकृत होकर और इस प्रकार अपूर्व शोभा को धारण कर सघन वृक्षों से पूर्ण उस अशोकवाटिका में प्रवेश किया।

अङ्गनाशतमात्रं तु तं व्रजन्तमनुव्रजन्।
महेन्द्रमिव पौलस्त्यं देवगन्धर्वयोषितः॥ ७॥

जब रावण अशोकवाटिका की ओर चला तो उसके पीछे सौ स्त्रियाँ भी इसी प्रकार चलीं जैसे देवराज इन्द्र के पीछे देव और गन्धर्वों की स्त्रियाँ चला करती हैं।

दीपिकाः काञ्चनीः काश्चिज्जगृहुस्तत्र योषितः।
बालव्यजनहस्ताश्च तालवृन्तानि चापराः॥ ८॥

उनमें से कुछ स्त्रियाँ अपने हाथों में स्वर्ण-दीपक लिए हुए थीं। किसी के हाथों में चँवर और किसी के हाथ में ताड़ के पंखे थे।

राजहंसप्रतीकाशं छत्रं पूर्णशशिप्रभम्।
सौवर्णदण्डमपरा गृहीत्वा पृष्ठतो ययौ॥ ९॥

कोई राजहंस की भाँति श्वेत और पूर्णिमा के चन्द्रमा की भाँति गोल सोने की डण्डीवाला छत्र रावण के ऊपर ताने हुए उसके पीछे चली जा रही थी।

निद्रामदपरीताक्ष्यो रावणस्योत्तमाः स्त्रियः।
अनुजग्मुः पतिं वीरं घनं विद्युल्लता इव॥ १०॥

इस प्रकार रावण की ये सुन्दरी और प्रिया स्त्रियाँ, जिनकी आँखें नींद और नशे से भरी हुई थीं अपने वीर पति के पीछे उसी प्रकार चली जा रही थीं जिस प्रकार मेघ के पीछे विद्युत् चला करती है।

ततः काञ्चीनिनादं च नूपुराणां च निःस्वनम्।
शुश्राव परमस्त्रीणां स कपिर्मारुतात्मजः॥ ११॥

प्रातःकालीन उस वेदध्वनि के पश्चात् पवनपुत्र हनुमान्‌जी ने उन सुन्दर स्त्रियों की तगड़ी और बिछुओं की झंकार को सुना।

तं चाप्रतिमकर्माणमचिन्त्यबलपौरुषम्।
द्वारदेशमनुप्राप्तं ददर्श हनुमान् कपिः॥ १२॥

साथ ही कपिश्रेष्ठ हनुमान् ने यह भी देखा कि परदारापहरण आदि अयुक्त कर्म करनेवाला तथा अचिन्त्य एवं असाधारण बल और पुरुषार्थ से युक्त रावण उस वाटिका के द्वार पर आ पहुँचा है।

वृतः परमनारीभिस्ताराभिरिव चन्द्रमाः।
रावणोऽयं महाबाहुरित्यचिन्तयत् वानरः॥ १३॥

परम रूपवती स्त्रियों से घिरे हुए राक्षसराज रावण को ताराओं से घिरे हुए चन्द्रमा की भाँति शोभित देखकर हनुमान्‌जी ने सोचा कि यह महाबाहु रावण ही है।

स तथाप्युग्रतेजाः सन्निर्धूतस्तस्य तेजसा।
पत्रगुह्यान्तरे सक्तो हनुमान् संवृतोऽभवत्॥ १४॥

यद्यपि हनुमान्‌जी स्वयं भी अत्यन्त तेजस्वी थे तथापि रावण के तेज के समक्ष वे निस्तेज हो गये और वृक्ष की एक डाली पर उसके सघन पत्तों में अपने आपको छिपा लिया।

सीतामसितकेशान्तां सुश्रोणीं संहतस्तनीम्।
दिदृक्षुरसितापाङ्गीमुपावर्तत रावणः॥ १५॥

उधर रावण काले केशोंवाली, सुन्दर एवं पतली कटिवाली, कठिन स्तनोंवाली और काले नेत्रोंवाली सीता को देखने के लिए उसके समीप पहुँचा।

एकादशः सर्गः (११)

रावण का सीता को प्रलोभन एवं प्रणय-प्रार्थना—

ततो दृष्ट्वैव वैदेही रावणं राक्षसाधिपम्।
प्रावेपत वरारोहा प्रवाते कदली यथा॥ १॥

राक्षसराज रावण को अशोकवाटिका में प्रवेश करते देखकर सीता डर के मारे वायु से कम्पित केले के पत्तों के समान काँपने लगी।

आच्छाद्योदरमूरुभ्यां बाहुभ्यां च पयोधरौ।
उपविष्टा विशालाक्षी रुदन्ती वरवर्णिनी॥ २॥

विशाल नेत्रोंवाली एवं सुन्दर वर्णवाली सीता दोनों जाँघों से अपने उदर और दोनों हाथों से अपने वक्षःस्थल को ढाँपकर रोती हुई वहाँ बैठ गई।

दशग्रीवस्तु वैदेहीं रक्षितां राक्षसीगणैः।
ददर्श सीतां दुःखार्तां नावं सन्नामिवार्णवे॥ ३॥

रावण ने देखा कि राक्षसियों से रक्षित, दुःख से अत्यन्त आर्त विदेह राजकुमारी सीता समुद्र की लहरों के झकोरों से डगमगाती नाव की तरह काँप रही है।

असंवृतायामासीनां धरण्यां संशितव्रताम्।
छिन्नां प्रपतितां भूमौ शाखामिव वनस्पतेः॥ ४॥

बिना बिछौना बिछाए, भूमि पर बैठी हुई व्रतचारिणी सीता को रावण ने इस प्रकार देखा जैसे किसी वृक्ष की डाली कटकर पृथिवी पर गिर पड़ी हो।

मलमण्डनचित्राङ्गीं मण्डनार्हाममण्डिताम्।
मृणाली पङ्कदिग्धेव विभाति न विभाति च॥ ५॥

सीता के सभी अङ्गों पर मैल चढ़ा हुआ था, फिर भी वह सुन्दर प्रतीत हो रही थी, वह भूषणों से भूषित होने योग्य होने पर भी भूषित नहीं थी, वह कीचड़ में सनी कमलिनी के समान सुशोभित भी दिखाई दे रही थी और अशोभित भी। (अतिरूपवती होने के कारण सुशोभित और मलिनता के कारण अशोभित दिखाई दे रही थी।)

समीपं राजसिंहस्य रामस्य विदितात्मनः।
सङ्कल्पहयसंयुक्तैर्यान्तिमिव मनोरथैः॥ ६॥

उस समय ऐसा प्रतीत होता था मानो सीता सङ्कल्परूपी घोड़ों से युक्त मन के रथ पर आरूढ़ होकर लोकप्रसिद्ध राजसिंह श्रीराम के पास जा रही है। (अर्थात् उस समय सीता राम के ध्यान में मग्न थी।)

सन्नामिव महाकीर्तिं श्रद्धामिव विमानिताम्।
प्रज्ञामिव परिक्षीणामाशां प्रतिहतामिव॥ ७॥

उस समय सीता नष्ट हुई कीर्ति के समान, तिरस्कृत श्रद्धा के समान, बुद्धि के समान और टूटी हुई आशा के समान जान पड़ती थी।

पतिशोकातुरां शुष्कां नदीं विस्राविताामिव।
परया मृजया हीनां कृष्णपक्षनिशामिव॥ ८॥

सीता पति के वियोगजन्य शोक से सन्तप्त होकर ऐसे सूख गई थी जैसे टूटे हुए बाँधवाली नदी जल के इधर-उधर बह जाने से सूख जाती है। शरीर में उबटन आदि न लगने से वह कृष्णपक्ष की रात्रि की भाँति कालीकलूटी-सी जान पड़ती थी।

एकया दीर्घया वेण्या शोभमानामयत्नतः।
नीलया नीरदापाये वनराज्या महीमिव॥ ९॥

बिना प्रयत्न के बँधी हुई एक लम्बी वेणी से वह उसी प्रकार सुशोभित हो रही थी जिस प्रकार वर्षाकाल के अन्त में हरी वन-पंक्ति से पृथिवी सुशोभित होती है।

उपवासेन शोकेन ध्यानेन च भयेन च।
परिक्षीणां कृशां दीनामल्पहारां तपोधनाम्॥ १०॥

उपवास से, शोक से, चिन्ता और भय के कारण क्षीण शरीरवाली, कृश, दीन, अल्पाहार करनेवाली और तपस्विनी सीता को रावण ने देखा।

स तां पतिव्रतां दीनां निरानन्दां तपस्विनीम्।
साकारैर्मधुरैर्वाक्यैर्न्यदर्शयत रावणः॥ ११॥



भयंकर राक्षसियों से घिरी हुई, दीन भाव को प्राप्त दुःखिया एवं तपस्विनी सीता से रावण हाव-भाव परिपूर्ण मधुर शब्दों में अपने मनोगत अभिप्राय को प्रकट करते हुए बोला—

मां दृष्ट्वा नागनासोरु गूहमाना स्तनोदरम्।
अदर्शनमिवात्मानं भयान्नेतुं त्वमिच्छसि॥ १२॥

हे हथिनी की सूँड के समान जाँघवाली सीते! क्या तू मुझे देखकर भय से अपने उदर और स्तनों को छिपाकर अपने आपको मेरे से ओझल करना चाहती है?

कामये त्वां विशालाक्षि बहुमन्यस्व मां प्रिये।
सर्वाङ्गगुणसम्पन्ने सर्वलोकमनोहरे॥ १३॥

हे सम्पूर्ण और शोभन अङ्गों से सम्पन्न विशालाक्षी! हे सर्वलोक मनोहरे! हे प्रिय! मैं हृदय से तुम्हें चाहता हूँ, अतः तू भी मुझे स्वीकार कर।

नेह केचिन्मनुष्या वा राक्षसाः कामरूपिणीः।
व्यपसर्पतु ते सीते भयं मत्तः समुत्थितम्॥ १४॥

हे सीते! इस समय यहाँ न तो कोई मनुष्य है और न ही स्वेच्छाचारी कोई राक्षस है (फिर तू डरती किससे है?) मुझसे तुम्हें जो भय उत्पन्न हो गया है उसे तुम अपने हृदय से निकाल दो।

स्वधर्मो रक्षसां भीरु सर्वथैव न संशयः।
गमनं वा परस्त्रीणां हरणं सम्प्रमथ्य वा॥ १५॥

हे भीरु! बलपूर्वक परस्त्रियों का हरण करना तथा उनसे सम्भोग करना निश्चय ही राक्षसों का स्वाभाविक धर्म है।

एवं चैतदकामां तु न त्वां स्प्रक्ष्यामि मैथिलि।
कामं कामः शरीरे मे यथाकामं प्रवर्तताम्॥ १६॥

इतना होने पर भी हे मैथिली! यदि तू न चाहेगी तो कामनाहीन तुम्हारे शरीर का मैं स्पर्श भी नहीं करूँगा[1] भले ही कामदेव मेरे शरीर में प्रविष्ट होकर मेरी कामाग्नि को प्रज्ज्वलित करता रहे।

देवि नेह भयं कार्यं मयि विश्वसिहि प्रिये।
प्रणयस्व च तत्त्वेन मैवं भूः शोकलालसा॥ १७॥

हे देवी! तुम यहाँ डरो मत! हे प्रिये! मुझ पर विश्वास करो। तुम मुझे अपना समझकर मेरे साथ यथार्थ प्रेम करो। अब किसी प्रकार का शोक मत करो।

एकवेणी धराशय्या ध्यानं मलिनाम्बरम्।
अस्थानेऽप्युपवासश्च नैतान्यौपयिकानि ते॥ १८॥

एक वेणी धारण करना, भूमि पर सोना, सदा चिन्तित रहना, मलिन वस्त्र धारण करना, और अकारण उपवास करना—यह सब तुम्हारे लिए उपयुक्त नहीं है।

विचित्राणि च माल्यानि चन्दनान्यगरूणि च।
विविधानि च वासांसि दिव्यान्याभरणानि च॥ १९॥
महार्हाणि च पानानि शयनान्यासनानि च।
गीतं नृत्यं च वाद्यं च लभ मां प्राप्य मैथिलि॥ २०॥

हे मैथिली! मुझे स्वीकार करके तू रंग-बिरंगे पुष्पों की मालाएँ, सुगन्धयुक्त अगर और चन्दन, नाना प्रकार के उत्तम वस्त्र, दिव्य-आभूषण, बहुमूल्य पेय पदार्थ, मूल्यवान् बिछौने और कालीन तथा गीत, नृत्य और वाद्य आदि की सामग्री—सभी कुछ उपलब्ध कर।

स्त्रीरत्नमसि मैवं भूः कुरु गात्रेषु भूषणम्।
मां प्राप्य हि कथं तु स्यास्त्वमनर्हा सुविग्रहे॥ २१॥

हे सीते! तुम स्त्री-रत्न हो, अतः ऐसा श्रृंगारहीन वेश मत बनाओ, अपितु अपने शरीर को अलंकारों से अलंकृत करो। हे सुन्दरी! मुझे प्राप्त करके भी तू अपने श्रृंगार करने योग्य शरीर को क्यों विनष्ट कर रही है?

इदं ते चारुसञ्जातं यौवनं ह्यतिवर्तते।
यदतीतं पुनर्नैति स्त्रोतः शीघ्रमपामिव॥ २२॥

हे सीते! तेरी यह सुन्दर उठी जवानी बीती जा रही है। स्मरण रख! यह यौवन नदी की धार की भाँति है जो एक बार बह जाने पर पुनः लौट कर

१. इस प्रसङ्ग में रावण के उज्ज्वल एवं आदर्श चरित्र की झांकी अवलोकनीय है।

नहीं आती।

त्वां कृत्वोपरतो मन्ये रूपकर्ता स विश्वसृक्।
नहि रूपोपमा त्वन्या तवास्ति शुभदर्शने॥ २३॥

हे सुन्दरी! ऐसा प्रतीत होता है कि रूप रचनेवाले सृष्टिकर्ता प्रभु ने तेरी रचना करके फिर रचना ही बन्द कर दिया है, क्योंकि तेरे समान रूपवती स्त्री और कोई दिखाई ही नहीं पड़ती।

त्वां समासाद्य वैदेहि रूपयौवनशालिनीम्।
कः पुमानतिवर्तेत साक्षादपि पितामहः॥ २४॥

हे वैदेही! तुम जैसी रूप-यौवनशालिनी युवती को पाकर कौन ऐसा मनुष्य होगा जिसका मन कुमार्ग में न जाए फिर वह व्यक्ति चाहे साक्षात् ब्रह्मा भी क्यों न हो।

यद्यत्पश्यामि ते गात्रं शीतांशुसदृशानने।
तस्मिंस्तस्मिन्पृथुश्रोणि चक्षुर्मम निबध्यते॥ २५॥

हे चन्द्रमुखी! हे सुन्दर कटिवाली! मैं तेरे शरीर के जिस-जिस अंग पर दृष्टि डालता हूँ मेरी आँख उसी-उसी अंग में अटककर रह जाती है।

भव मैथिलि भार्या मे मोहमेनं विसर्जय।
बह्वीनामुत्तमस्त्रीणां ममाग्रमहिषी भव॥ २६॥

हे मैथिलि! तू मेरी पत्नी बन जा। राम के प्रति अपने मोह को त्याग दे। मेरी जो बहुत-सी उत्तम स्त्रियाँ हैं तू उनकी पटरानी बन जा।

इच्छ मां क्रियतामद्य प्रतिकर्म तवोत्तमम्।
साधु पश्यामि ते रूपं सुयुक्तं प्रतिकर्मणा॥ २७॥

हे सीते! तू मुझे स्वीकार कर जिससे आज ही तेरा भली-भाँति शृंगार किया जाए। मेरी इच्छा है कि मैं तेरे शृंगार किए हुए रूप को देखूँ।

भुङ्क्ष्व भोगान्यथाकामं पिब भीरु रमस्व च[१]।
यथेष्टं च प्रयच्छ त्वं पृथिवीं वा धनानि च॥ २८॥

हे भीरु! मुझे स्वीकार करके तू अपनी इच्छानुसार भोगों को भोग, मदिरा का पान कर और मेरे साथ रमणकर तथा स्वेच्छापूर्वक धन या भूमि का दान कर।

किं करिष्यसि रामेण सुभगे चीरवाससा।
निक्षिप्तविजयो रामो गतश्रीर्वनगोचरः॥ २९॥

हे सुभगे! वल्कल वस्त्रधारी राम को लेकर तू क्या करेगी? तेरे अपहरण के कारण राम के विजय-साधन—उत्साह आदि नष्ट हो गये हैं राज्यलक्ष्मी उसके हाथ से निकल गई है और वह वनों में मारा-मारा फिरता है।

न रामस्तपसा देवि न बलेन न विक्रमैः।
न धनेन मया तुल्यस्तेजसा यशसाऽपि वा॥ ३०॥

हे देवि! तप, बल, पराक्रम, धन, तेज और यश में राम मेरे समान नहीं है।

नहि वैदहि रामस्त्वां द्रष्टुं वाप्युपलप्स्यते।
न चापि मम हस्तात्त्वां प्राप्तुमर्हति राघवः॥ ३१॥

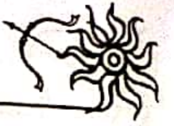
हे वैदहि! राम तो अब तुझे देख भी नहीं सकता (और कदाचित् देख भी ले) तो मेरे हाथों से तुझे किसी भी प्रकार ले नहीं सकता।

पिब विहर रमस्व भुङ्क्ष्व भोगान्
धननिचयं प्रदिशामि मेदिनीं च।
मयि लल ललने यथासुखं तव
त्वयि च समेत्य ललन्तु बान्धवास्ते॥ ३२॥

अतः हे सीते! तू राम का ध्यान छोड़कर आनन्दपूर्वक मद्य का पान कर, विहार कर, रमण कर, भोगों का उपभोग कर। मैं तुझे यथेष्ट भूमि, धन और भोगों को प्रदान करता हूँ। हे ललने! तू भी मेरे साथ मनमाना सुख भोग और तेरे साथ तेरे बन्धुजन भी सुख भोगें।

---

१. पाश्चात्य संस्कृति का आदर्श है 'Eat, drink and be merry' प्राचीनकाल में भी यह संस्कृति थी। अंग्रेजी के ये शब्द संस्कृत श्लोक का अनुवाद मात्र ही हैं। देखिए—'**भुङ्क्ष्व भोगान्**'=Eat '**पिब**'=Drink और '**रमस्व**'=be merry.



द्वादशः सर्गः (१२)

सीता द्वारा रावण की भर्त्सना—

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा सीता रौद्रस्य रक्षसः।
तृणमन्तरतः कृत्वा प्रत्युवाच शुचिस्मिता॥ १॥

उस भयंकर राक्षसराज रावण के इन वचनों को सुनकर शुचिस्मिता सीता अपने और रावण के मध्य तृण को मध्यस्थ बनाकर रावण से बोली—

न मां प्रार्थयितुं युक्तं सुसिद्धिमिव पापकृत।
अकार्यं न मया कार्यमेकपत्न्या विगर्हितम्।
कुलं सम्प्राप्तया पुण्यं कुले महति जातया॥ २॥

हे रावण! जैसे ब्रह्मप्राप्ति रूपी सिद्धि पापिष्ठ जन द्वारा चाहने योग्य नहीं होती वैसे ही मैं भी तेरे चाहने योग्य नहीं हूँ अर्थात् जैसे पापी पुरुष सिद्धि प्राप्त नहीं कर सकता उसी प्रकार तू भी मुझे प्राप्त नहीं कर सकता। मैं उत्तम कुल में उत्पन्न हुई तत्पश्चात् पवित्र कुल में मेरा विवाह हुआ। मैं पतिव्रता हूँ, अतः मुझसे इस निन्दित दुष्कर्म की आशा मत कर।

एवमुक्त्वा तु वैदेही रावणं तं यशस्विनी।
राक्षसं पृष्ठतः कृत्वा भूयो वचनमब्रवीत्॥ ३॥

यशस्विनी सीता ने रावण से ऐसा कहकर उस राक्षस की ओर से अपना मुख फेर लिया फिर पृष्ठ भाग में बैठे हुए रावण से बोली—

नाहमौपायिकी भार्या परभार्या सती तव।
साधु धर्ममवेक्षस्व साधु साधुव्रतं चर॥ ४॥

मैं दूसरे की पत्नी और सती स्त्री हूँ, अतः मैं तेरी उपयुक्त भार्या नहीं बन सकती। तुझे उचित है कि तू सज्जनों द्वारा सेवित सद्धर्म और सद्व्रत=श्रेष्ठ पुरुषों के व्यवहार का आचरण कर।

यथा तव तथाऽन्येषां रक्ष्या दारा निशाचर।
आत्मानमुपमां कृत्वा स्वेषु दारेषु रम्यताम्॥ ५॥

हे निशाचर! जैसे अपनी स्त्री की रक्षा करनी चाहिए उसी प्रकार पर-स्त्रियों की भी रक्षा करनी चाहिए। अपने को उपमा बनाकर तुम अपनी ही स्त्रियों से रमण करो।

अतुष्टं स्वेषु दारेषु चपलं चलितेन्द्रियम्।
नयन्ति निकृतिप्रज्ञं परदाराः पराभवम्॥ ६॥

जो अजितेन्द्रिय मनुष्य चञ्चलेन्द्रिय बनकर अपनी स्त्रियों के साथ सन्तुष्ट नहीं होते ऐसे निकृष्ट बुद्धिवाले पतित पामरों को पर-स्त्रियों से पग-पग पर अपमानित होना पड़ता है।

इह सन्तो न वा सन्ति सतो वा नानुवर्तसे।
तथा हि विपरीता ते बुद्धिराचारवर्जिता॥ ७॥

क्या यहाँ सज्जन पुरुष नहीं रहते? यदि रहते हैं तो क्या तुम उनका अनुगमन नहीं करते? प्रतीत होता है तुझे उत्तम पुरुषों का सहवास पसन्द नहीं, इसी से तेरी बुद्धि सर्वथा विपरीत और आचारभ्रष्ट हो रही है।

अकृतात्मानमासाद्य राजानमनये रतम्।
समृद्धानि विनश्यन्ति राष्ट्राणि नगराणि च॥ ८॥

स्मरण रख, अनीति-पथ का अनुसरण करनेवाले अजितेन्द्रिय राजा के कारण धन-धान्य से समृद्ध नगर और राष्ट्र नष्ट-भ्रष्ट हो जाते हैं।

तथेयं त्वां समासाद्य लङ्का रत्नौघसङ्कुला।
अपराधात्तवैकस्य न चिराद्विनशिष्यति॥ ९॥

तुझ जैसे अविवेकी राजा को प्राप्त कर, तुम्हारे ही अपराधों के कारण धन-धान्य और रत्नों से समृद्ध यह लंका शीघ्र नष्ट हो जायेगी।

शक्या लोभयितुं नाहमैश्वर्येण धनेन वा।
अनन्या राघवेणाहं भास्करेण प्रभा यथा॥ १०॥

हे रावण! तू अपने ऐश्वर्य अथवा धन-सम्पत्ति से मुझे लुभा नहीं सकता। जैसे सूर्य की प्रभा सूर्य से पृथक् नहीं हो सकती इसी प्रकार मैं भी राम से पृथक् नहीं हो सकती। मैं श्रीराम की अनन्य-परायणा धर्मपत्नी हूँ।

उपधाय भुजं तस्य लोकनाथस्य सत्कृतम्।
कथं नामोपधास्यामि भुजमन्यस्य कस्यचित्॥ ११॥

लोकनाथ श्रीराम की अलंकृत भुजा का आश्रय लेकर अब मैं अन्य किसी की भुजा का आश्रय कैसे ले सकती हूँ?

अहमौपयिकी भार्या तस्यैव वसुधापतेः।
साधु रावण रामेण मां समानय दुःखिताम्॥ १२॥

मैं महाराज राम की ही उपयुक्त भार्या हूँ। हे रावण! यदि तू अपना कल्याण चाहता है तो मुझ दुःखिया को श्रीराम से मिला दे।

मित्रमौपयिकं कर्तुं रामः स्थानं परीप्सता।
वधं चानिच्छता घोरं त्वयाऽसौ पुरुषर्षभः॥ १३॥

हे रावण! यदि तू लङ्का की रक्षा करना चाहता है और यदि तुझे अपना मरना अभीष्ट नहीं है तो तेरे लिए उपयुक्त यही है कि तू श्रीराम को अपना मित्र बना ले।

एवं हि ते भवेत्स्वस्ति सम्प्रदाय रघूत्तमे।
अन्यथा त्वं हि कुर्वाणो वधं प्राप्स्यसि रावण॥ १४॥

राम को अपना मित्र बनाने और विनयपूर्वक मुझे श्रीराम को सौंपे देने से ही तेरा कल्याण होगा यदि तूने ऐसा न किया तो हे रावण! तू मारा जायेगा।

◀ त्रयोदशः सर्गः ▶ (१३)

सीता को कठोर वचन कह और दो मास की अवधि निश्चित कर रावण का लौटना—

सीताया वचनं श्रुत्वा परुषं राक्षसाधिपः।
प्रत्युवाच ततः सीतां विप्रियं प्रियदर्शनाम्॥ १॥

सीताजी के इन कठोर वचनों को सुनकर राक्षसराज रावण सुन्दरी सीता से ये अप्रिय वचन बोला—

यथा यथा सान्त्वयिता वश्यः स्त्रीणां तथा तथा।
यथा यथा प्रियं वक्ता परिभूतस्तथा तथा॥ २॥

हे सीते! जैसे-जैसे पुरुष स्त्री को प्रिय वचनों द्वारा समझाता है वैसे-वैसे ही स्त्री उस पुरुष के वश में हो जाती है, परन्तु मैंने प्रिय वचनों द्वारा जितना तुम्हें समझाया तुमने उतना ही मेरा तिरस्कार किया।

सन्नियच्छति मे क्रोधं त्वयि कामः समुत्थितः।
द्रवतोऽमार्गमासाद्य हयानिव सुसारथिः॥ ३॥

क्या करूँ, मैं तेरे ऊपर आसक्त हूँ। तुम्हारे प्रति उत्पन्न मेरी कामासक्ति मेरे क्रोध को उसी प्रकार रोके हुए है जैसे उत्तम सारथि कुमार्ग की ओर दौड़ते हुए घोड़ों को रोकता है।

वामः कामो मनुष्याणां यस्मिन्किल निबध्यते।
जने तस्मिंस्त्वनुक्रोशः स्नेहश्च किल जायते॥ ४॥

कुटिल काम मनुष्यों के लिए निश्चय ही बहुत बड़ा बन्धन है, क्योंकि जिसके प्रति काम उभर आता है निश्चय ही उसके प्रति दया और स्नेह उत्पन्न हो जाता है।

एतस्मात्कारणान्न त्वां घातयामि वरानने।
वधार्हामवमानार्हां मिथ्याप्रव्रजिते रताम्॥ ५॥

हे सुमुखि! इसी कारण मैं तेरा वध नहीं करता अन्यथा कपट से वनवास करनेवाले राम में आसक्त तू तिरस्कार और वध करने योग्य ही है।

परुषाणीह वाक्यानि यानि यानि ब्रवीषि माम्।
तेषु तेषु वधो युक्तस्तव मैथिलि दारुणः॥ ६॥

हे मैथिलि! तूने मेरे प्रति जो-जो कठोर वचन कहे हैं उनमें से प्रत्येक पर तेरा निर्दयता पूर्वक वध ही उचित है।

एवमुक्त्वा तु वैदेहीं रावणो राक्षसाधिपः।
क्रोशःसंरम्भसंयुक्तः सीतामुत्तरमब्रवीत्॥ ७॥

राक्षसराज रावण सीता को ऐसे कठोर वचन कहकर और क्रोध के आवेग से युक्त होकर सीता की बातों का उत्तर देने लगा—



द्वौ मासौ रक्षितव्यौ मे योऽवधिस्ते मया कृतः।
ततः शयनमारोह मम त्वं वरवर्णिनि॥ ८॥

हे सुन्दरी! मैंने तुम्हारे लिए जो अवधि निश्चित की थी उसमें अभी दो मास शेष हैं, अतः मुझे दो मास प्रतीक्षा करनी है। दो मास की अवधि बीतने पर तुझे मेरी शय्या पर आना होगा।

द्वाभ्यामूर्ध्वं तु मासाभ्यां भर्तारं मामनिच्छतीम्।
मम त्वां प्रातराशार्थे सूदाश्छेत्स्यन्ति खण्डशः॥ ९॥

यदि दो मास की अवधि बीतने पर भी तूने मुझे पति के रूप में स्वीकार नहीं किया तो मेरे पाचक लोग मेरे प्रातराश=प्रातःकालिक भोजन के लिए तेरे टुकड़े-टुकड़े कर डालेंगे।

तां भर्त्स्यमानां संप्रेक्ष्य राक्षसेन्द्रेण जानकीम्।
देवगन्धर्वकन्यास्ता विषेदुर्विकृतेक्षणाः॥ १०॥

राक्षसराज रावण द्वारा भर्त्सना की जाती हुई सीता को देखकर रावण के साथ आईं देव और गन्धर्व कन्याएँ सीताजी को कनखियों से देख-देखकर अत्यन्त दुःखी हुईं।

ओष्ठप्रकारैरपरा वक्त्रैर्नेत्रैस्तथाऽपराः।
सीतामाश्वासयामासुस्तर्जितां तेन रक्षसा॥ ११॥

रावण द्वारा भर्त्सना की जाती हुई सीता को किसी कन्या ने ओष्ठों के, किसी ने मुख के और किसी ने नेत्रों के संकेत से आश्वासन दिया।

ताभिराश्वासिता सीता रावणं राक्षसाधिपम्।
उवाचात्महितं वाक्यं वृत्तशौण्डीर्यगर्वितम्॥ १२॥

उनके द्वारा आश्वस्त सीता ने पतिव्रत बल से बलान्वित होकर राक्षसराज रावण को उसके अपने हित की बात है कही—

नूनं न ते जनः कश्चिदस्ति निःश्रेयसे स्थितः।
निवारयति यो न त्वां कर्मणोऽस्माद्विगर्हितात्॥ १३॥

हे रावण! मुझे विश्वास हो गया कि इस लङ्कापुरी में कोई भी तेरा हितैषी नहीं है जो तुझे इस निन्दित कर्म से रोके।

मां हि धर्मात्मनः पत्नीं शचीमिव शचीमतेः।
त्वदन्यस्त्रिषु लोकेषु प्रार्थयेन्मनसाऽपि कः॥ १४॥

इसीलिए तेरे अतिररिक्त तीनों लोकों में कोई भी ऐसा पुरुष नहीं होगा जो इन्द्र की पत्नी शची के समान धर्मात्मा राम की पत्नी मुझको चाहने की मन में भी कल्पना कर सके।

राक्षसाधम रामस्य भार्याममिततेजसः।
उक्तवानसि यत्पापं क्व गतस्तस्य मोक्ष्यसे॥ १५॥

हे राक्षसाधम! अमित तेजस्वी श्रीराम की धर्मपत्नी से तूने जो पापपूर्ण बातें कही हैं उस पाप से तू कहाँ जाकर छुटकारा पाएगा?

यथा दृप्तश्च मातङ्गः शशश्च सहितौ वने।
तथा द्विरदवद्रामस्त्वं नीचशशवत्स्मृतः॥ १६॥

जैसे मदमत्त हाथी और खरगोश वन में एक साथ ही रहते हैं तथापि वे बराबर नहीं हो सकते वैसे ही श्रीराम हाथी के समान हैं और तू क्षुद्र खरगोश की भाँति है।

स त्वमिक्ष्वाकुनाथं वै क्षिपन्निह न लज्जसे।
चक्षुषोर्विषयं तस्य न तावदुपगच्छसि॥ १७॥

क्षुद्र खरगोश की भाँति होकर भी क्या तुझे इक्ष्वाकुनाथ श्रीराम की निन्दा करते हुए लज्जा नहीं आती। अस्तु जब तक तू राम के समक्ष नहीं पड़ता तब तक तू जो चाहे सो कह ले।

इमे ते नयने क्रूरे विरूपे कृष्णपिङ्गले।
क्षितौ न पतिते कस्मान्मामनार्य निरीक्षतः॥ १८॥

अरे अनार्य! तेरी ये क्रूर, टेढ़ी-मेढ़ी और काली-पीली आँखें, जिनसे तू मुझे बुरी दृष्टि से देखता है, निकलकर पृथिवी पर क्यों नहीं गिर पड़तीं?

तस्य धर्मात्मनः पत्नीं स्नुषा दशरथस्य च।
कथं व्याहरतो मां ते न जिह्वा पाप शीर्यते॥ १९॥

ऐ पापी! धर्मात्मा राम की धर्मपत्नी और महाराज दशरथ की पुत्रवधू मुझसे इस प्रकार खोटे वचन बोलते हुए तेरी जिह्वा गलकर गिर क्यों नहीं पड़ती?



असंदेशात्तु रामस्य तपसश्चानुपालनात्।
न त्वां कुर्मि दशग्रीव भस्म भस्मार्हतेजसा॥ २०॥

हे रावण! श्रीराम का आदेश न होने से और तपश्चर्या की रक्षा के कारण मैं भस्म करने में समर्थ होकर भी अपने तेज से तुझे भस्म नहीं कर रही हूँ।

नापहर्तुमहं शक्या तस्य रामस्य धीमतः।
विधिस्तव वधार्थाय विहितो नात्र संशयः॥ २१॥

बुद्धिमान् श्रीराम की पत्नी मैं अपहृत नहीं की जा सकती थी। निश्चय ही तेरे द्वारा मेरे अपहरण का विधान परमात्मा ने तेरे नाश के लिए ही रचा है।

शूरेण धनदभ्रात्रा बलैः समुदितेन च।
अपोह्य रामं कस्माद्धि दारचौर्यं त्वया कृतम्॥ २२॥

अरे! तू तो अपने को शूरवीर समझता है, कुबेर का भाई बनता है और सैन्य-संग्रह से भी युक्त है फिर तूने धोखे से राम को दूर हटाकर उनकी पत्नी को क्यों चुराया।

सीताया वचनं श्रुत्वा कोपसंरक्तलोचनः।
उवाच रावणः सीतां भुजङ्ग इव निःश्वसन्॥ २३॥

सीता के वचनों को सुनकर रावण क्रोध के मारे लाल-लाल आँखें कर और सर्प की भाँति फुँकारता हुआ सीता से बोला—

अनयेनाभिसम्पन्नमर्थहीनमनुव्रते।
नाशयाम्यहमद्य त्वां सूर्यः सन्ध्यामिवौजसा॥ २४॥

अरी नीतिशून्य और राज्यच्युत राम का अनुगमन करनेवाली सीते! आज मैं तूझे अपने तेज से उसी प्रकार नष्ट किये देता हूँ जैसे सूर्य सन्ध्याकालीन अन्धकार को नष्ट कर देता है।

इत्युक्त्वा मैथिलीं राजा रावणः शत्रुरावणः।
सन्दिदेश ततः सर्वा राक्षसीर्घोरदर्शनाः॥ २५॥

शत्रुओं को रुलानेवाले रावण ने सीता से इस प्रकार कहकर वहाँ उपस्थित सभी भयंकर राक्षसियों को आज्ञा दी—

यथा मद्वशगा सीता क्षिप्रं भवति जानकी।
तथा कुरुत राक्षस्यः सर्वाः क्षिप्रं समेत्य च॥ २६॥

हे राक्षसियो! तुम सब मिलकर ऐसा प्रयत्न करो जिससे जनककुमारी सीता शीघ्र मेरे वश में हो जाए।

प्रतिलोमानुलोमैश्च सामदानादिभेदनैः।
आवर्जयत वैदेहीं दण्डस्योद्यमनेन च॥ २७॥

तुम अनुकूल और प्रतिकूल उपायों से, साम, दान एवं भेद आदि से अथवा डरा-धमकाकर, दण्ड के प्रयोग से, जैसे भी हो वैसे ही तुम सीता को मेरे अनुकूल कर दो।

इति प्रतिसमादिश्य राक्षसेन्द्रः पुनः पुनः।
प्रस्थितः स दशग्रीवः कम्पयन्निव मेदिनीम्॥ २८॥

उन राक्षसियों को बार-बार इस प्रकार की आज्ञा देकर वह रावण पृथिवी को कम्पायमान-सा करता हुआ वहाँ से चला गया।

➤ चतुर्दशः सर्गः ➤ (१४)

राक्षसियों का सीता को डराना-धमकाना और फुसलाना—

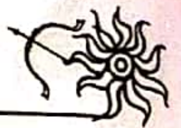
निष्क्रान्ते राक्षसेन्द्रे तु पुनरन्तःपुरं गते।
राक्षस्यो भीमरूपास्ताः सीतां समभिदुद्रुवुः॥ १॥

राक्षसराज रावण के वहाँ से निकलकर अन्तः-पुर में चले जाने पर भयंकर रूपवाली राक्षसियाँ सीता की ओर लपकीं।

ततः सीतामुपागम्य राक्षस्यः क्रोधमूर्च्छिताः।
परं परं परुषया वाचा वैदेहीमिदमब्रुवन्॥ २॥

सीता के समीप पहुँचकर क्रोधाविष्ट वे राक्षसियाँ विदेह की पुत्री सीता से अत्यन्त कठोर वाणी से ये वचन बोलीं—

पौलस्त्यस्य वरिष्ठस्य रावणस्य महात्मनः।
दशग्रीवस्य भार्यात्वं सीते न बहु मन्यसे॥ ३॥



हे सीते! पुलस्त्य कुल में उत्पन्न, श्रेष्ठ, महाबली रावण की पत्नी बनने को क्या तू बड़ी बात नहीं समझती?

ततस्त्वेकजटा नाम राक्षसी वाक्यमब्रवीत्।
आमन्त्र्य क्रोधताम्राक्षी सीतां करतलोदरीम्॥ ४॥

तत्पश्चात् क्रोध से लाल नेत्रोंवाली एकजटा नाम की राक्षसी कृशोदरी=छोटे पेटवाली सीता को सम्बोधित करके कहने लगी—

प्रजापतीनां षण्णां तु चतुर्थो यः प्रजापतिः।
मानसो ब्रह्मणः पुत्रः पुलस्त्य इति विश्रुतः॥ ५॥

पूर्वकाल में वंशकर्त्ता ब्रह्मा के छह पुत्र[1] हुए। ये सब भाई प्रजा-पालक राजा हुए। इन छह प्रजापतियों में से चौथा प्रजाप्रति ब्रह्मा का मनस्वी पुत्र पुलस्त्य नाम से प्रसिद्ध हुआ।

पुलस्त्यस्य तु तेजस्वी महर्षिर्मानसः सुतः।
नाम्ना स विश्रवा नाम प्रजापतिसमप्रभः॥ ६॥

उस महर्षि पुलस्त्य का अत्यन्त तेजस्वी और मनस्वी पुत्र विश्रवा के नाम से प्रसिद्ध हुआ। वे प्रताप में अपने पिता के तुल्य ही थे।

तस्य पुत्रो विशालाक्षि रावणः शत्रुरावणः।
तस्य त्वं राक्षसेन्द्रस्य भार्या भवितुमर्हसि॥ ७॥

हे विशाल नेत्रोंवाली! उस विश्रवा का पुत्र यह शत्रुओं का रुलानेवाला रावण है। तुम्हें इस राक्षसराज रावण की पत्नी बन जाना चाहिए।

ततो हरिजटा नाम राक्षसी वाक्यमब्रवीत्।
विवृत्य नयने कोपान्मार्जारसदृशेक्षणा॥ ८॥

एकजटा के ऐसा कहने के पश्चात् बिल्ली जैसी आँखोंवाली हरिजटा नाम की राक्षसी क्रुद्ध हो और त्यौरी चढ़ाकर सीता से कहने लगी—

येन देवास्त्रयस्त्रिंशद्देवराजश्च निर्जितः।
तस्य त्वं राक्षसेन्द्रस्य भार्या भवितुमर्हसि॥ ९॥

जिसने तैंतीस देवताओं और देवराज इन्द्र को जीत लिया है तुम्हें उस राक्षसराज रावण की भार्या बन जाना चाहिए।

ततस्तु प्रघसा नाम राक्षसी क्रोधमूर्च्छिता।
भर्त्सयन्ती तदा घोरमिदं वचनमब्रवीत्॥ १०॥

तत्पश्चात् प्रघसा नामक राक्षसी क्रोध में पागल होकर सीताजी को डाँटती-डपटती हुई यह कठोर वचन बोली—

वीर्योत्सिक्तस्य शूरस्य संग्रामेष्वनिवर्तिनः।
बलिनो वीर्ययुक्तस्य भार्यात्वं किं न लिप्ससे॥ ११॥

अत्यन्त पराक्रमी, शूरवीर, युद्धक्षेत्र में पीठ न दिखानेवाले, बलवान् और शक्तिशाली रावण की भार्या बनना तुम क्यों पसन्द नहीं करतीं?

अन्या तु विकटा नाम राक्षसी वाक्यमब्रवीत्।
असकृद्देवता युद्धे समरे येन निर्जिताः॥ १२॥
तस्य सर्वसमृद्धस्य रावणस्य महात्मनः।
किमद्य राक्षसेन्द्रस्य भार्यात्वं नेच्छसेऽधमे॥ १३॥

तब विकटा नामक राक्षसी कहने लगी—जिसने अनेक बार देवताओं को युद्ध में परास्त किया है, हे अधमे! तू उस सर्वसम्पन्न, महाबली राक्षसराज रावण की पत्नी बनना क्यों नहीं चाहती?

ततस्तु दुर्मुखी नाम राक्षसी वाक्यमब्रवीत्।
यस्य सूर्यो न तपति भीतो यस्य च मारुतः।
न वाति चासितापाङ्गे किं त्वं तस्य न तिष्ठसि॥ १४॥

तदनन्तर दुर्मुखी नाम की राक्षसी कहने लगी—हे काले नेत्रोंवाली! जिससे भयभीत होकर न तो सूर्य अधिक तपता है और न वायु ही बहुत तीव्र चलती है तू उसके वश में क्यों नहीं हो जाती है?

पुष्पवृष्टिं च तरवो मुमुचुर्यस्य वै भयात्।
शैलाश्च सुभ्रूः पानीयं जलदाश्च यदेच्छति॥ १५॥
तस्य नैर्ऋतराजस्य राजराजस्य भामिनि।
किं त्वं न कुरुषे बुद्धिं भार्यार्थे रावणस्य हि॥ १६॥

हे सुन्दर भौंहोंवाली! उसके भय से वृक्ष फूलों

१. ब्रह्मा के छह पुत्र जो प्रजापति हुए ये हैं—१. मरीचि, २. अत्रि, ३.अङ्गिरस, ४.पुलस्त्य, ५. पुलह, ६.क्रतु।



की वर्षा किया करते हैं, उसके डर से पर्वत पानी बहाया करते हैं और वह जब चाहता है तब मेघ जल बरसाते हैं। हे भामिनि ? तू उस राक्षस-सम्राट् रावण की पत्नी बनने का निश्चय क्यों नहीं करती ?

साधु ते तत्त्वतो देवि कथितं साधु भामिनि।
गृहाण सुस्मिते वाक्यमन्यथा च भविष्यति॥ १७॥

हे सुन्दरी! देवि सीता! मैंने तुझसे तेरे कल्याण के लिए ठीक-ठीक बात कह दी है। हे मन्द-मुस्कानवाली! तू इस बात को मान ले अन्यथा तू जीवित नहीं रह सकती।

≺ पञ्चदशः सर्गः ≻ (१५)

राक्षसियों का सीता को डराना-धमकाना—

ततः सीतां समस्तास्ता राक्षस्यो विकृताननाः।
परुषं परुषा नार्य ऊचुस्तां वाक्यमप्रियम्॥ १॥

तत्पश्चात् विकराल आकृतिवाली वे सब राक्षसी-नारियाँ एक साथ सीताजी को अत्यन्त कठोर वचन कहने लगीं—

किं त्वमन्तःपुरे सीते सर्वभूतमनोहरे।
महार्हशयनोपेते न वासमनुमन्यसे॥ २॥

हे सीते! तू प्राणिमात्र का मन मोह लेनेवाले और अत्यन्त मूल्यवान् शय्याओं से युक्त रावण के अन्तःपुर में रहने की स्वीकृति क्यों नहीं दे देती ?

मानुषी मानुषस्यैव भार्यात्वं बहु मन्यसे।
प्रत्याहर मनो रामान्न त्वं जातु भविष्यसि॥ ३॥

मानुषी होने के कारण तू मनुष्य राम की भार्या बनना ही अधिक सम्मानजनक समझती है, परन्तु अब तू राम की ओर से अपना मन हटा ले अन्यथा तू जीवित नहीं रह सकेगी।

त्रैलोक्यवसुभोक्तारं रावणं राक्षसेश्वरम्।
भर्तारमुपसंगम्य विहरस्व यथासुखम्॥ ४॥

तीनों लोकों के धन-धान्य का उपभोग करनेवाले राक्षसराज रावण को अपना पति बनाकर तू आनन्दपूर्वक विहार कर।

मानुषी मानुषं तं तु राममिच्छसि शोभने।
राज्याद् भ्रष्टमसिद्धार्थं विक्लबं त्वमनिन्दिते॥ ५॥

हे सुन्दरी! हे प्रशंसित सीते! तू मनुष्य की वंशज होने को कारण मनुष्य राम को चाह रही है, परन्तु वह तो राज्य से भ्रष्ट है, असफल मनोरथ और नपुंसक है।

राक्षसीनां वचः श्रुत्वा सीतापद्मनिभेक्षणा।
नेत्राभ्यामश्रुपूर्णाभ्यामिदं वचनमब्रवीत्॥ ६॥

राक्षसियों के वचन सुनकर कमलनयनी सीता आँखो में आँसू भरकर यह वचन बोली—

यदिदं लोकविद्विष्टमुदाहरथ सङ्गताः।
नैतन्मनसि वाक्यं मे किल्बिषं प्रतिभाति वः॥ ७॥

तुम सब मिलकर मुझे जो पाठ पढ़ा रही हो वह लोकनिन्दित है। तुम्हारी ये पापपूर्ण बातें मेरे मन में नहीं बैठतीं।

न मानुषी राक्षसस्य भार्या भवितुमर्हति।
कामं खादत मां सर्वा न करिष्यामि वा वचः॥ ८॥

मैं मानुषी होकर राक्षस की पत्नी कदापि नहीं बनूँगी। चाहे तुम सब मिलकर मुझे खा जाओ, परन्तु मैं तुम्हारी बात नहीं मान सकती।

दीनो वा राज्यहीनो वा यो मे भर्ता स मे गुरुः।
तं नित्यमनुरक्ताऽस्मि यथा सूर्यं सुवर्चला॥ ९॥

भले ही मेरा पति दीन हों, चाहे राज्य से हीन हों, किन्तु मेरे लिए तो वे ही पूज्य हैं। मैं उनमें सदा ही अनुरक्त हूँ जैसे सूर्य की पत्नी सुवर्चला अपने पति में अनुरक्त थी।

यथा शची महाभागा शक्रं समुपतिष्ठति।
अरुन्धती वसिष्ठं च रोहिणी शशिनं यथा॥ १०॥



लोपामुद्रा यथागस्त्यं सुकन्या च्यवनं यथा।
तथाऽहमिक्ष्वाकुवरं रामं पतिमनुव्रता॥ ११॥

जैसे महाभागा शची इन्द्र की सेवा करती है—उसके अनुकूल चलती है, जैसे अरुन्धती वसिष्ठ का अनुगमन करती है तथा रोहिणी चन्द्रमा के प्रति अनुरक्त है, जैसे लोपामुद्रा अगस्त्य में और सुकन्या महर्षि च्यवन में प्रीति रखती है इन सबकी भाँति मैं इक्ष्वाकु श्रेष्ठ श्रीराम को अपना पति समझ उनका अनुगम करनेवाली हूँ।

सीताया वचनं श्रुत्वा राक्षस्यः क्रोधमूर्च्छिताः।
भर्त्सयन्ति स्म परुषैर्वाक्यै रावणचोदिताः॥ १२॥

सीता के इन वचनों को सुनकर क्रोध से पूर्ण और रावण द्वारा आदिष्ट एवं प्रेरित वे राक्षसियाँ कठोर वाक्यों द्वारा सीताजी की भर्त्सना करने लगीं।

संभर्त्स्यमाना भीमाभी राक्षसीभिर्वरानना।
सा बाष्पमपमार्जन्तीं शिंशपां तामुपागमत्॥ १३ ॥

उन भयंकर आकृतिवाली राक्षसियों द्वारा डराई-धमकाई गई सुन्दरमुखी सीता आँखों से आँसू पोंछती हुई उस अशोक वृक्ष के पास पहुँची (जिस पर हनुमान्‌जी बैठे हुए थे।)

ततस्तां शिंशपां सीता राक्षसीभिः समावृता।
अभिगम्य विशालाक्षी तस्थौ शोकपरिप्लुता॥ १४॥
तां कृशां दीनवदनां मलिनाम्बरवासिनीम्।
भर्त्सयांचक्रिरे सीतां राक्षस्यस्तां समन्ततः॥ १५॥

राक्षसियों से घिरी हुई, शोकसागर में निमग्न, विशाल नेत्रोंवाली सीता उस शिंशप वृक्ष के पास जाकर बैठ गई। वहाँ भी वे राक्षसियाँ दुर्बल, दीन मुखवाली और मलिन वस्त्र धारण करनेवाली सीता को चारों ओर से घेरकर उसको डराने और धमकाने लगीं।

ततस्तां विनता नाम राक्षसी भीमदर्शना।
अब्रवीत्कुपिताकारा कराला निर्णतोदरी॥ १६॥

जब सब राक्षसियाँ सीता को डरा-धमका चुकीं तब भयंकर आकृतिवाली, लम्बे-चौड़े आकारवाली और पिचके पेटवाली विनता नामक राक्षसी अत्यन्त क्रुद्ध होकर सीता से कहने लगी—

सीते पर्याप्तमेतावद्भर्तुः स्नेहो निदर्शितः।
सर्वत्रातिकृतं भद्रे व्यसनायोपकल्पते॥ १७॥

हे सीते! बस बहुत हुआ। तूने अब तक अपने पति के प्रति जितना स्नेह दिखाया वह पर्याप्त है। हे भद्रे! अति किसी बात की भी अच्छी नहीं होती क्योंकि अति का परिणाम दुःखदायी होता है।

परितुष्टास्मि भद्रं ते मानुषस्ते कृतो विधिः।
ममापि नु वचः पथ्यं ब्रुवन्त्याः कुरु मैथिलि॥ १८॥

हे मिथिलेश-कुमारी! तुम्हारा कल्याण हो। तूने मानवोचित कर्तव्य को यथाविधि निभाया है, अतः मैं तुझसे प्रसन्न हूँ, परन्तु अब मैं तेरे कल्याण के लिए जो बात कहती हूँ उसे तू कर।

रावणं भज भर्तारं भर्तारं सर्वरक्षसाम्।
विक्रान्तं रूपवन्तं च सुरेशमिव वासवम्॥ १९॥

हे सीते! तू राक्षसों के स्वामी, इन्द्र के समान ऐश्वर्यशाली, महापराक्रमी और रूपवान् रावण को पति के रूप में स्वीकार कर ले।

एतदुक्तं च मे वाक्यं यदि त्वं न करिष्यसि।
अस्मिन्मुहूर्ते सर्वास्त्वां भक्षयिष्यामहे वयम्॥ २०॥

हे सीते! मैंने तुझसे जो बातें कही हैं यदि तू उन्हें स्वीकार नहीं करेगी तो हम सब मिलकर इसी क्षण तुझे मारकर खा जायेंगी।

अन्या तु विकटा नाम लम्बमानपयोधरा।
अब्रवीत् कुपिता सीतां मुष्टिमुद्यम्य गर्जती॥ २१॥

तत्पश्चात् लम्बे स्तनोंवाली विकटा नाम की एक और राक्षसी क्रोध में भरकर और घूँसा तानकर सीता से बोली—

अलमश्रुप्रपातेन त्यज शोकमनर्थकम्।
सीते राक्षसराजेन सह क्रीड यथासुखम्॥ २२॥

हे सीते! अब रोना-धोना बन्द कर और इस व्यर्थ के शोक को छोड़ दे। अब तो तू आनन्दपूर्वक राक्षसराज रावण के साथ विहार कर।

जानासि हि यथा भीरु स्त्रीणां यौवनमध्रुवम्।
यावन्न ते व्यतिक्रामेत्तावत्सुखमवाप्नुहि॥ २३॥

हे भीरु! जैसा कि तुझे पता है स्त्रियों की युवावस्था थोड़े ही समय रहनेवाली है, अत: जब तक तुम्हारी यह अवस्था व्यतीत न हो तब तक तुम खूब आनन्द भोगो।

उत्पाट्य वा ते हृदयं भक्षयिष्यामि मैथिलि।
यदि मे व्याहृतं वाक्यं न यथावत्करिष्यसि॥ २४॥

हे मैथिलि! यदि तू मेरे कथनानुसार कार्य नहीं करेगी तो मैं तेरे हृदय को फाड़कर खा जाऊँगी।

तस्तु प्रघसा नाम राक्षसी वाक्यमब्रवीत्।
कण्ठमस्या नृशंसाया: पीडयाम किमास्यते॥ २५॥

तदनन्तर प्रघसा नामक राक्षसी कहने लगी—तुम सब बैठी क्यों हो? इस दुष्टा का गला घोंट डालो।

एवं संभर्त्स्यमाना सा सीता सुरसुतोपमा।
राक्षसीभिः सुघोराभिर्धैर्यमुत्सृज्य रोदिति॥ २६॥

जब उन भयंकर राक्षसियों ने उस देव-कन्या के समान सीता को इस प्रकार डराया-धमकाया तब वह धैर्य त्यागकर रोने लगी।

➤ षोडशः सर्गः ➤ (१६)

सीता का विलाप—

एवमुक्ता तु वैदेही राक्षसीभिर्मनस्विनी।
उवाच परमत्रस्ता बाष्पगद्गदया गिरा॥ १॥

उन राक्षसियों के ऐसा कहने पर मनस्विनी सीता अत्यन्त भयभीत होकर अश्रुओं के कारण गद्गद वाणी से बोली—

न मानुषी राक्षसस्य भार्या भवितुमर्हति।
कामं खादत मां सर्वा न करिष्यामि वो वचः॥ २॥

भला कहीं मानुषी भी राक्षस की पत्नी बन सकती है? भले ही तुम सब मुझे मारकर खा डालो, परन्तु मैं तुम्हारी बात नहीं मान सकती।

सा राक्षसीमध्यगता सीता सुरसुतोपमा।
न शर्म लेभे दुःखार्ता रावणेन च तर्जिता॥ ३॥

उस समय राक्षसियों के बीच में फँसी हुई देवकन्या के समान सीता को, जो दु:ख से व्याकुल थी और रावण द्वारा डराई-धमकाई गई थी, दु:ख से छुटकारा पाने का कोई उपाय नहीं सूझ पड़ता था।

वेपते स्माधिकं सीता विशन्तीवाङ्गमात्मनः।
वने यूथपरिभ्रष्टा मृगी कोकैरिवार्दिता॥ ४॥

उस समय सीता थरथर काँप रही थी, और भय के कारण सिकुड़कर अपने ही अङ्गों में घुसी जाती थी। उस समय सीता की अवस्था ऐसी थी मानो अपने झुण्ड से पृथक् हुई कोई अकेली हिरनी भेड़ियों द्वारा पीड़ित की जा रही हो।

सा त्वशोकस्य विपुलां शाखामालम्ब्य पुष्पिताम्।
चिन्तायामास शोकेन भर्तारं भग्नमानसा॥ ५॥

अशोक वृक्ष की एक विशाल पुष्पित शाखा का सहारा लेकर शोक से उद्विग्न मनवाली सीता अपने पति श्रीराम का स्मरण करने लगी।

सा स्नापयन्ती विपुलौ स्तनौ नेत्रजलस्रवैः।
चिन्तयन्ती न शोकस्य तदाऽन्तमधिगच्छति॥ ६॥

उस समय उसकी आँखों से निकले हुए आँसू उसके वक्षस्थल पर गिरकर उसके बड़े-बड़े स्तनों को धो रहे थे। वह उस संकट से पार होने का उपाय सोच रही थी, परन्तु उसे शोकसागर से पार होने का कोई उपाय नहीं सूझता था।

सा वेपमाना पतिता प्रवाते कदली यथा।
राक्षसीनां भयत्रस्ता विषण्णवदनाऽभवत्॥ ७॥

अन्त में वह थरथराकर वायु के झोंके से गिरे हुए केले के पेड़ के समान भूमि पर गिर पड़ी। राक्षसियों के डर से उसका मुख म्लान (उदास) हो गया।



सा निःश्वसन्ती दुःखार्ता शोकोपहतचेतना।
आर्ता व्यसृजदश्रूणि मैथिली विललाप ह॥ ८॥

सचेत होने पर, दुःख से पूर्ण एवं शोक से आहत चित्तवाली सीता दीर्घ निःश्वास लेती हुई आँसू बहाते हुए विलाप करने लगी।

हा रामेति च दुःखार्ता हा पुनर्लक्ष्मणेति च।
हा श्वश्रु मम कौसल्ये हा सुमित्रेति भामिनि॥ ९॥
लोकप्रवादः सत्योऽयं पण्डितैः समुदाहृतः।
अकाले दुर्लभो मृत्युः स्त्रिया वा पुरुषस्य वा॥ १०॥

दुःख से पीड़ित सीता विलाप करते हुए कहने लगी—हा राम! हा लक्ष्मण! हा मेरी सास कौसल्ये! हा भामिनि सुमित्रे! पण्डितों द्वारा कही हुई यह लोकोक्ति सत्य ही है कि बिना समय आये, चाहे स्त्री हो या पुरुष, कोई नहीं मरता।

यत्राहमेवं क्रूराभी राक्षसीभिरिहार्दिता।
जीवामि हीना रामेण मुहूर्तमपि दुःखिता॥ ११॥

यदि ऐसा न होता तो क्या इन क्रूर राक्षसियों से इस प्रकार पीड़ित होकर, दुःखिया मैं, श्रीराम के बिना एक मुहूर्त भी जी सकती थी?

एषाऽल्पपुण्या कृपणा विनशिष्याम्यनाथवत्।
समुद्रमध्ये नौः पूर्णा वायुवेगैरिवाहता॥ १२॥

मैं अल्पपुण्या और दीन-दुखियारी एक अनाथिनी की भाँति वैसे ही नष्ट हो जाऊँगी जैसे द्रव्यों से परिपूर्ण नौका समुद्र में वायु के झोंकों से नष्ट हो जाती है।

भर्तारं तमपश्यन्ती राक्षसीवशमागता।
सीदामि खलु शोकेन कूलं तोयहतं यथा॥ १३॥

राक्षसियों के चंगुल में फँसी हुई और पति को न देखती हुई मैं उसी प्रकार शोक से नष्ट हो रही हूँ जिस प्रकार पानी के धक्कों से नदी-तट नष्ट होता है।

तं पद्मदलपत्राक्षं सिंहविक्रान्तगामिनम्।
धन्याः पश्यन्ति मे नाथं कृतज्ञं प्रियवादिनम्॥ १४॥

जो लोग कमलनयन, सिंह के समान पराक्रमी कृतज्ञ और मधुरभाषी मेरे स्वामी राम के दर्शन करते है वे धन्य हैं।

सर्वथा तेन हीनाया रामेण विदितात्मना।
तीक्ष्णं विषमिवास्वाद्यदुर्लभं मम जीवितम्॥ १५॥

लोकप्रसिद्ध श्रीराम से विहीन मेरा जीना उसी प्रकार सर्वथा दुर्लभ है जैसे हलाहल विष के पान करनेवाले का जीवन कठिन होता है।

कीदृशं तु मया पापं पुरा जन्मान्तरे कृतम्।
येनेदं प्राप्यते दुःखं मया घोरं सुदारुणम्॥ १६॥

पता नहीं पूर्वजन्म में मैंने कैसे-कैसे पापकर्म किये थे जिनके फलस्वरूप मुझे यह घोर दारुण दुःख सहना पड़ रहा है।

जीवितं त्यक्तुमिच्छामि शोकेन महता वृता।
राक्षसीभिश्चर क्षन्त्या रामो नासाद्यते मया॥ १७॥

महान् शोक से घिरी हुई मैं अब अपने जीवन को त्यागना चाहती हूँ क्योंकि इन राक्षसियों के पहरे में रहकर मैं श्रीराम को प्राप्त नहीं कर सकती।

धिगस्तु खलु मानुष्यं धिगस्तु परवश्यताम्।
न शक्यं यत्परित्यक्तुमात्मच्छन्देन जीवितम्॥ १८॥

मनुष्य-जन्म को धिक्कार है और पराधीनता को भी धिक्कार है जिसके चंगुल में फँसकर इच्छानुसार प्राण-परित्याग भी **नहीं** किया जा सकता।

◀ सप्तदशः सर्गः ▶ (१७)

सीता द्वारा प्राण-त्याग का निश्चय—

प्रसक्ताश्रुमुखीत्येवं ब्रुवती जनकात्मजा।
अधोमुखमुखी बाला विलपितुमुपचक्रमे॥ १॥

अश्रुपूर्ण मुखवाली, इस प्रकार बोलती हुई सीता ने नीचे की ओर मुख करके फिर विलाप करना आरम्भ कर दिया।



अश्मसारमिदं नूनमथवाप्यजरामरम्।
हृदयं मम येनेदं न दुःखेनावशीर्यते॥ २॥

निश्चय ही मेरा हृदय वज्र का बना हुआ है अथवा यह अजर-अमर है तभी तो इतने कष्ट आने पर भी यह टुकड़े-टुकड़े नहीं होता ?

धिङ्मामनार्यामसतीं याऽहं तेन विना कृता।
मुहूर्तमपि रक्षामि जीवितं पापजीविका॥ ३॥

मुझ असती एवं अनार्या को धिक्कार है जो मैं पापिन श्रीराम के बिना मुहूर्त भर भी जीवित हूँ।

चरणेनापि सव्येन न स्पृशेयं निशाचरम्।
रावणं किं पुनरहं कामयेयं विगर्हितम्॥ ४॥

उस दुष्ट रावण को मैं अपने बाएँ पैर से भी नहीं छू सकती फिर उस निन्दित राक्षस की कामना तो कर ही कैसे सकती हूँ ?

छिन्ना भिन्ना विभक्ता वा दीप्ता वाग्नौ प्रदीपिता।
रावणं नोपतिष्ठेयं किं प्रलापेन वश्चिरम्॥ ५॥

हे राक्षसियो! चाहे मेरे शरीर के टुकड़े-टुकड़े कर डालो, चाहे मुझे मसल डालो, चाहे मेरे शरीर की बोटी-बोटी अलग कर दो और चाहे मुझे जलती अग्नि में झोंक दो, परन्तु मैं रावण के समीप उपस्थित नहीं हो सकती—उसे स्वीकार नहीं कर सकती, अतः तुम्हारे इस प्रलाप से क्या प्रयोजन ?

ख्यातः प्राज्ञः कृतज्ञश्च सानुक्रोशश्च राघवः।
सद्वृत्तो निरनुक्रोशः शङ्के मद्भाग्यसंक्षयात्॥ ६॥

श्रीराम संसार में प्रसिद्ध पता नहीं इस समय वे ऐसे निष्ठुर क्यों हो गये हैं। हो-न-हो, यह मेरे ही भाग्य का दोष है।

राक्षसानां जनस्थाने सहस्राणि चतुर्दश।
येनैकेन निरस्तानि स मां किं नाभिपद्यते॥ ७॥

जिन्होंने अकेले ही जनस्थान में चौदह सहस्र राक्षसों को परास्त कर दिया था क्या वे मेरी रक्षा नहीं करेंगे ?

निरुद्धा रावणेनाहमल्पवीर्येण रक्षसा।
समर्थः खलु मे भर्ता रावणं हन्तुमाहवे॥ ८॥

इस अल्पशक्तिवाले रावण ने मुझे यहाँ लाकर बन्दी बना रखा है, परन्तु निश्चय ही मेरे पति श्रीराम युद्ध में रावण का वध करेंगे।

यदि मामिह जानीयाद्वर्तमानां स राघवः।
अद्य बाणैरभिक्रुद्धः कुर्याल्लोकमराक्षसम्॥ ९॥

यदि श्रीराम को मेरा यहाँ रहना ज्ञात हो जाए तो वे आज ही क्रुद्ध होकर सारे लोकों को अपने बाणों से राक्षस-शून्य कर डालेंगे।

निर्दहेच्च पुरीं लङ्कां शोषयेच्च महोदधिम्।
रावणस्य च नीचस्य कीर्तिं नाम च नाशयेत्॥ १०॥

(यदि उन्हें मेरे यहाँ होने का ज्ञान हो जाये तो) वे समुद्र को सुखाकर लंकापुरी को जला डालें और इस नीच रावण के यश और नाम को नष्ट कर डालें।

नाजानाज्जीवतीं रामः स मां लक्ष्मणपूर्वजः।
जानन्तौ तौ न कुर्यातां नोर्व्यां हि मम मार्गणम्॥ ११॥

हा! लक्ष्मण-सहित श्रीराम नहीं जानते कि मैं अभी जीवित हूँ। जानने पर वे दोनों पृथिवी पर मेरा अन्वेषण न करें यह नहीं हो सकता।

नूनं ममैव शोकेन स वीरो लक्ष्मणाग्रजः।
देवलोकमितो यातस्त्यक्त्वा देहं महीतले॥ १२॥

निश्चय ही मेरे वियोगजन्य शोक से पीड़ित हो, लक्ष्मण के ज्येष्ठ भ्राता श्रीराम अपना शरीर पृथिवी पर छोड़कर परलोक सिधार गये।

अथवा न्यस्तशस्त्रौ तौ वने मूलफलाशिनौ।
भ्रातरौ हि नरश्रेष्ठौ संवृतौ वनगोचरौ॥ १३॥

अथवा यह हो सकता है कि नरश्रेष्ठ वे दोनों भाई शास्त्रों का परित्याग कर फलमूल खाते और मुनिवृत्ति धारणकर वनों में घूमते-फिरते हों।

अथवा राक्षसेन्द्रेण रावणेन दुरात्मना।
छद्मना सादितौ शूरौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ॥ १४॥

अथवा दुष्टात्मा राक्षसराज रावण ने उन दोनों भाइयों—राम और लक्ष्मण को छल से मरवा डाला हो।



साऽहमेवं गते काले मर्तुमिच्छामि सर्वथा।
न च मे विहितो मृत्युरस्मिन्दुःखेऽपि वर्तति॥ १५॥

ऐसा संकट का समय उपस्थित होने पर अब मैं सर्वथा मरना चाहती हूँ, परन्तु ऐसे दुःख में भी मेरे भाग्य में मृत्यु नहीं लिखी।

धन्या खलु महात्मानो मुनयस्त्यक्तकिल्बिषाः।
जितात्मानो महाभागा येषां न स्तः प्रियाप्रिये॥ १६॥

निश्चय ही वे पाप-रहित, जितेन्द्रिय, ऐश्वर्यशाली मुनि लोग धन्य हैं जिनका न तो कोई प्रिय=मित्र है और न अप्रिय=शत्रु है अर्थात् जो राग-द्वेषरहित हैं।

प्रियान्न सम्भवेद्दुःखमप्रियान्नाधिकं भयम्।
ताभ्यां हि ये वियुज्यन्ते नमस्तेषां महात्मनाम्॥ १७॥

जिनको अपने प्रियजन के बिछुड़ने से दुःख नहीं होता और अप्रिय के मिलने से भय नहीं होता, अतः इन दोनों से अर्थात् प्रिय और अप्रिय से—राग तथा द्वेष से जो पृथक् है उन महात्माओं को नमस्कार।

साऽहं त्यक्तां प्रियार्हेण रामेण विदितात्मना।
प्राणांस्त्यक्ष्यामि पापस्य रावणस्य गता वशम्॥ १८॥

लोकप्रसिद्ध अथवा आत्मज्ञानी राम द्वारा परित्यक्ता तथा पापी रावण की कैद में पड़ी हुई मैं अब अपने प्राण त्यागती हूँ।

➤ अष्टादशः सर्गः ➤ (१८)

त्रिजटा का स्वप्न—

इत्युक्ताः सीतया घोरा राक्षस्यः क्रोधमूर्च्छिताः।
काश्चिज्जग्मुस्तदाख्यातुं रावणस्य तरस्विनः॥ १॥

सीता के ऐसा कहने पर क्रोध से पूर्ण कुछ भयंकर राक्षसियाँ यह वृत्तान्त कहने के लिए वीर रावण के पास चल दीं।

ततः सीतामुपागम्य राक्षस्यो घोरदर्शनाः।
पुनः परुषमेकार्थमनर्थार्थमथाब्रुवन्॥ २॥

तदनन्तर जो वहीं रह गईं वे भयंकर रूपवाली राक्षसियाँ सीता के पास जा पूर्ववत् उसे कठोर और बुरे-बुरे वचन कहने लगीं।

सीतां ताभिरनार्याभिर्दृष्ट्वा सन्तर्जितां तदा।
राक्षसी त्रिजटा वृद्धा शयाना वाक्यमब्रवीत्॥ २॥

उन निष्ठुर हृदया राक्षसियों द्वारा सीता को डराए-धमकाए जाते देखकर त्रिजटा नामक एक वृद्धा राक्षसी लेटे-लेटे उनसे कहने लगी—

स्वप्नो ह्यद्य मया दृष्टो दारुणो रोमहर्षणः।
राक्षसानामभावाय भर्तुरस्या जयाय च॥ ३॥

आज मैंने एक भयंकर एवं रोमाञ्चकारी स्वप्न देखा है जिससे प्रतीत होता है कि राक्षसों का नाश होगा और इसके पति की विजय होगी।

एवमुक्तास्त्रिजटया सर्वा एवाब्रुवन्भीताः।
कथयस्व त्वया दृष्टः स्वप्नोऽयं कीदृशो निशि॥ ४॥

त्रिजटा का यह वचन सुनकर वे सब राक्षसियाँ भयभीत होकर बोलीं—बताओ तुमने रात्रि में कैसा स्वप्न देखा था?

तासां तु वचनं श्रुत्वा राक्षसीनां मुखोद्गतम्।
उवाच वचनं काले त्रिजटा स्वप्नसंश्रितम्॥ ५॥

उन राक्षसियों के मुख से निकले प्रश्न को सुनकर त्रिजटा ने उन्हें अपने स्वप्न का वृत्तान्त सुनाना आरम्भ किया—

गजदन्तमयीं दिव्यां शिबिकामन्तरिक्षगाम्।
युक्तां हंससहस्रेण स्वयमास्थाय राघवः।
शुक्लमाल्याम्बरधरो लक्ष्मणेन सहागतः॥ ६॥

मैंने स्वप्न में देखा है कि हाथी-दाँत से निर्मित सहस्रों हंसों से युक्त, आकाशचारिणी एक दिव्य पालकी में बैठकर, श्वेत माला और श्वेत वस्त्रों को धारण कर लक्ष्मण-सहित श्रीराम लंका में आ गये हैं।



स्वप्ने चाद्य मया दृष्टा सीता शुक्लाम्बरावृता।
सागरेण परिक्षिप्तं श्वेतं पर्वतमास्थिता।
रामेण सङ्गता सीता भास्करेण प्रभा यथा॥ ७॥

आज स्वप्न में मैंने सीता को सफेद साड़ी पहने हुए और समुद्र से घिरे हुए एक श्वेत पर्वत के ऊपर बैठे देखा है। उस पर्वत पर श्रीराम के साथ सीताजी वैसे ही विराजमान हैं जैसे सूर्य के साथ उसकी प्रभा।

राघवश्च मया दृष्टश्चतुर्दन्तं महागजम्।
आरूढः शैलसङ्काशं चचार सहलक्ष्मणः॥ ८॥

फिर मैंने देखा कि श्रीराम चार दाँतोंवाले और पर्वत के समान विशालकाय हाथी की पीठ पर लक्ष्मण-सहित सवार होकर चले जाते हैं।

रावणश्च मया दृष्टः क्षितौ तैलसमुक्षितः।
रक्तवासाः पिबन्मत्तः करवीरकृतस्रजः॥ ९॥

मैंने रावण को भी स्वप्न में देखा है। वह तेल में डूबा हुआ पृथिवी पर लोट रहा है। उसने लाल वस्त्र धारण किये हुए हैं, मद्य पीकर वह उन्मत्त है, और कनेर के पुष्पों की माला धारण किये हुए है।

विमानात्पुष्पकादद्य रावणः पतितो भुवि।
कृष्यमाणः स्त्रिया दृष्टो मुण्डः कृष्णाम्बरः पुनः॥ १०॥

(मद्यपान से उन्मत्त, रक्तवस्त्रधारी एवं कनेर पुष्प की माला धारण किए हुए) रावण आज पुष्पक विमान से पृथिवी पर गिर पड़ा है। मैंने देखा कि स्त्रियाँ उसे खींच रही हैं। उसका मूँड मुँडा हुआ है और वह काले वस्त्र पहने हुए है।

रथेन खरयुक्तेन रक्तमाल्यानुलेपनः।
पिबंस्तैलं हसन्नृत्यन्भ्रान्तचित्ताकुलेन्द्रियः॥ ११॥
गर्दभेन ययौ शीघ्रं दक्षिणां दिशमास्थितः।
एवं तत्र मया दृष्टः कुम्भकर्णो निशाचरः॥ १२॥

मैंने यह भी देखा कि रावण लाल माला पहने हुए और लाल चन्दन लगाए हुए गधों से युक्त रथ में बैठा हुआ है, फिर देखा कि वह तेल पीते हुए, हँसते हुए, नाचते हुए, भ्रान्त चित्त और व्याकुल होकर गधे पर सवार हो शीघ्रता-पूर्वक दक्षिण दिशा की ओर जा रहा है। इसी प्रकार मैंने निशाचर कुम्भकर्ण को भी देखा है।

रावणस्य सुताः सर्वे मुण्डास्तैलसमुक्षिताः।
वराहेण दशग्रीवः शिशुमारेण चेन्द्रजित्॥ १३॥
उष्ट्रेण कुम्भकर्णश्च प्रयातो दक्षिणां दिशम्।
एकस्तत्र मया दृष्टः श्वेतच्छत्रो विभीषणः॥ १४॥

मैंने रावण के समस्त पुत्रों को भी मूँड-मुँडाए और तेल में डूबे हुए देखा है, तत्पश्चात् मैंने रावण को शूकर पर, मेघनाद को सूँस पर और कुम्भकर्ण को ऊँट पर सवार होकर दक्षिण दिशा की ओर जाते हुए देखा है। मैंने केवल विभीषण को सफेद छत्र ताने हुए देखा है।

लङ्का दृष्टा मया स्वप्ने रावणेनाभिरक्षिता।
दग्धा रामस्य दूतेन वानरेण तरस्विना॥ १५॥

मैंने स्वप्न में यह भी देखा है कि रावण द्वारा रक्षित लंका श्रीराम के किसी बलशाली वानर दूत ने जलाकर भस्म कर डाली है।

अपगच्छत नश्यध्वं सीतामाप्नोति राघवः।
घातयेत्परमामर्षी सर्वैः सार्धं हि राक्षसैः॥ १६॥

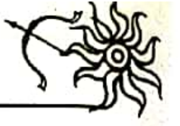
हे राक्षसियों! तुम सब यहाँ से दूर हट जाओ, अदृश्य हो जाओ, अब श्रीराम शीघ्र ही सीता से मिलनेवाले हैं, ऐसा न हो कि वे क्रोध में भरकर राक्षसों के साथ तुम्हें भी मार डालें।

प्रियां बहुमतां भार्यां वनवासमनुव्रताम्।
भर्त्सितां तर्जितां वाऽपि नानुमंस्यति राघवः॥ १७॥

प्राणप्रिया, अत्यन्त कृपापात्र और वन में भी साथ देनेवाली अपनी पत्नी की भर्त्सना या तर्जना को रघुकुल-शिरोमणि राम सहन नहीं कर सकेंगे।

तदलं क्रूरवाक्यैर्वः सान्त्वमेवाभिधीयताम्।
अभियाचाम वैदेहीमेतद्धि मम रोचते॥ १८॥

अब सीता से कठोर वचन मत कहो, अब तो सान्त्वना के शब्दों का प्रयोग करो और मुझे तो यह रुचिकर प्रतीत होता है कि हम सब मिलकर सीता के अनुग्रह की याचना करें।



ततः सा ह्रमती बाला भर्तुर्विजयहर्षिता।
अवोचद् यदि तत्तथ्यं भवेयं शरणं हि वः॥ ९९॥

ये बातें सुनकर लज्जाशील सुन्दरी सीता पति की विजय से हर्षित होती हुई बोली—यदि तुम्हारा यह कथन ठीक हुआ तो मैं तुम्हारी रक्षा करूँगी।

◄ एकोनविंशः सर्गः ► (१९)

हनुमान् का कर्तव्याकर्तव्य-चिन्तन—

हनुमानपि विक्रान्तः सर्वं शुश्राव तत्त्वतः।
सीतायास्त्रिजटायाश्च राक्षसीनां च तर्जनम्॥ १॥

सीताजी का विलाप, त्रिजटा के स्वप्न का वृत्तान्त और राक्षसियों का गर्जन और तर्जन—इन सब बातों को पराक्रमी हनुमान् ने भी स्पष्ट रूप में सुना।

अवेक्षमाणस्तां देवीं देवतामिव नन्दने।
ततो बहुविधां चिन्तां चिन्तयामास वानरः॥ २॥

नन्दन-वन में रहनेवाली सुर-सुन्दरी की भाँति अशोक-वाटिका में बैठी हुई उस देवी सीता को देखकर हनुमान्‌जी नाना प्रकार की चिन्ता करने लगे।

युक्तं तस्याप्रमेयस्य सर्वसत्त्वदयावतः।
समाश्वासयितुं भार्यां पतिदर्शनकाङ्क्षिणीम्॥ ३॥

वे सोचने लगे—इस समय मुझे अप्रमेय (जिसके गुण प्रभाव अचिन्त्य हैं) और प्राणिमात्र पर दया करनेवाले श्रीराम की पतिव्रता धर्मपत्नी को जो पति-दर्शन की अभिलाषिणी है, धैर्य बँधाना चाहिए।

यदि ह्यहमिमां देवीं शोकोपहतचेतनाम्।
अनाश्वास्य गमिष्यामि दोषवद् गमनं भवेत्॥ ४॥

यदि मैं शोक से व्याकुल सीता को आश्वासन दिए बिना ही लौट जाऊँ तो मेरा लौटना दोषपूर्ण माना जायेगा।

गते हि मयि तत्रेयं राजपुत्री यशस्विनी।
परित्राणमविन्दन्ती जानकी जीवितं त्यजेत्॥ ५॥

मेरे लौट जाने पर यशस्विनी राजकुमारी सीता अपनी रक्षा का कोई उपाय न देखकर निश्चय ही अपने प्राण त्याग देगी।

रामश्च यदि पृच्छेन्मां किं मां सीताऽब्रवीद्वचः।
किमहं तं प्रतिब्रूयामसम्भाष्य सुमध्यमाम्॥ ६॥

फिर जब श्रीराम मुझसे पूछेंगे कि सीता ने मेरे लिए क्या सन्देशा दिया था तो मैं बिना सीता से बातचीत किये उन्हें क्या उत्तर दूँगा?

अन्तरं त्वहमासाद्य राक्षसीनामिह स्थितः।
शनैराश्वासयिष्यामि सन्तापबहुलामिमाम्॥ ७॥

अतः अब मैं यहाँ बैठकर प्रतीक्षा करता हूँ जैसे ही मुझे अवसर मिला मैं इन राक्षसियों की दृष्टि बचा चुपके-से अत्यन्त सन्तापयुक्त सीता को सान्त्वना प्रदान करूँगा।

अहं त्वतितनुश्चैव वानरश्च विशेषतः।
वाचं चोदाहरिष्यामि मानुषीमिह संस्कृताम्॥ ८॥

इस समय मैं लघुशरीर में हूँ और फिर वानर जाति का हूँ, अतः मैं सामान्य नागरिक मनुष्य के समान परिमार्जित भाषा का प्रयोग करूँगा।

यदि वाचं प्रदास्यामि द्विजातिरिव संस्कृताम्।
रावणं मन्यमाना मां सीता भीता भविष्यति॥ ९॥

यदि मैं द्विजाति (ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य) के समान परिमार्जित संस्कृत भाषा का प्रयोग करूँगा तो मुझे रावण समझकर सीता भय से संत्रस्त हो जायेंगी।

कथं नु खलु वाक्यं मे शृणुयान्नोद्विजेत वा।
इति सञ्चिन्त्य हनुमांश्चकार मतिमान्मतिम्॥ १०॥

मैं ऐसा कौन-सा उपाय करूँ जिससे सीता मेरी बात सुन ले और मुझसे भयभीत भी न हो ऐसा सोच-विचार कर बुद्धिमान् हनुमान् ने निश्चय किया कि—



इक्ष्वाकूणां वरिष्ठस्य रामस्य विदितात्मनः।
शुभानि धर्मयुक्तानि वचनानि समर्पयन्॥ ११॥
श्रावयिष्यामि सर्वाणि मधुरां प्रब्रुवन्गिरम्।
श्रद्धास्यति यथा हीयं तथा सर्वं समादधे॥ १२॥

मैं महानात्मा, इक्ष्वाकुकुल-श्रेष्ठ श्रीराम के सम्पूर्ण धर्मयुक्त शुभ-कर्मों को मधुर भाषा में सुनाऊँगा और जिस प्रकार से सीता मुझ पर विश्वास करेगी मैं वैसा ही करूँगा।

◀ विंशः सर्गः ▶ (२०)

हनुमान् द्वारा राम का गुण-गान—

एवं बहुविधां चिन्तां चिन्तयित्वा महाकपिः।
संश्रवे मधुरं वाक्यं वैदेह्या व्याजहार ह॥ १॥

महामति हनुमान् इस प्रकार बहुत सोच-विचार करके, सीता को सुनाते हुए इस प्रकार के मधुर वचन कहने लगे—

राजा दशरथो नाम रथकुञ्जरवाजिमान्।
पुण्यशीलो महाकीर्तिर्ऋजुरासीन्महयशाः॥ २॥

इक्ष्वाकुवंश में दशरथ नाम के एक राजा हुए हैं जो हाथी, घोड़े और रथों से युक्त थे। वे पुण्यशील, महान् कीर्तिवाले, अत्यन्त सरल एवं महायशस्वी थे।

अहिंसारतिरक्षुद्रो घृणी सत्यपराक्रमः।
मुख्यश्चेक्ष्वाकुवंशस्य लक्ष्मीवांल्लक्ष्मिवर्धनः॥ ३॥

वे हिंसा से दूर रहते थे, ऊँचे विचारोंवाले थे, दयालु और सत्यपराक्रमी थे। वे अत्यन्त कान्तिमान्, इक्ष्वाकुवंशियों में श्रेष्ठ और इक्ष्वाकुवंश की सम्पत्ति और वैभव को बढ़ानेवाले थे।

तस्य पुत्रः प्रियो ज्येष्ठस्ताराधिपनिभाननः।
रामो नाम विशेषज्ञः श्रेष्ठः सर्वधनुष्मताम्॥ ४॥

चन्द्रमा के समान मुखमण्डलवाले, सर्वधनुर्धारियों में श्रेष्ठ, सकल शास्त्रों के विशेषज्ञ उनके ज्येष्ठ पुत्र श्रीराम उनको बहुत प्रिय थे।

रक्षिता स्वस्य वृत्तस्य स्वजनस्यापि रक्षिता।
रक्षिता जीवलोकस्य धर्मस्य च परन्तपः॥ ५॥

शत्रुसन्तापी श्रीराम अपने चरित्र की रक्षा करनेवाले और अपने प्रियजनों का प्रतिपालन करनेवाले हैं। इतना ही नहीं वे प्राणिमात्र के रक्षक एवं धर्म की संस्थापना करनेवाले हैं।

तस्य सत्याभिसन्धस्य वृद्धस्यवचनात्पितुः।
सभार्यः सह च भ्रात्रा वीरः प्रव्राजितो वनम्॥ ६॥

सत्यप्रतिज्ञ एवं वृद्ध पिताजी की आज्ञा का मानकर महाबली श्रीराम अपनी पत्नी और भाई के साथ वन में चले आयें।

तेन तत्र महारण्ये मृगयां परिधावता।
राक्षसा निहताः शूरा बहवः कामरूपिणः॥ ७॥

वन में आकर श्रीराम ने मृगया=शिकार के लिए पर्यटन करते हुए इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले अनेक बड़े-बड़े राक्षसों का संहार किया।

जनस्थानवधं श्रुत्वा हतौ च खरदूषणौ।
ततस्त्वमर्षापहृता जानकी रावणेन तु॥ ८॥

जनस्थान का नाश तथा खर और दूषण की मृत्यु का समाचार सुनकर प्रतिशोध की भावना से द्वेषी रावण ने सीताजी का अपहरण किया।

स मार्गमाणस्तां देवीं रामः सीतामनिन्दिताम्।
आससाद वने मित्रं सुग्रीवं नाम वानरम्॥ ९॥

श्रीराम ने अपनी उस सुन्दरी पत्नी को खोजते हुए वन में सुग्रीव नामक वानर से मैत्री की।

ततः स बालिनं हत्वा रामः परपुरञ्जयः।
प्रायच्छत्कपिराज्यं तत्सुग्रीवाय महात्मने॥ १०॥

सुग्रीव से मैत्री होने पर शत्रु के नगरों को जीतनेवाले श्रीराम ने बाली को मारकर वानर-राज्य महात्मा सुग्रीव को सौंप दिया।

सुग्रीवेणापि सन्दिष्टा हरयः कामरूपिणः।
दिक्षु सर्वासु तां देवीं विचिन्वन्ति सहस्रशः॥ ११॥



अब सुग्रीव के द्वारा आदिष्ट होकर यथेष्ट रूपधारी सहस्रों वानर उस देवी सीता को खोजते हुए वनों में विचर रहे हैं।

अहं सम्पातिवचनाच्छतयोजनमायतम्।
अस्या हेतोर्विशालाक्ष्याः सागरं वेगवान्प्लुतः॥ १२॥

मैंने सम्पाति के कहने से विशालाक्षी सीताजी को देखने के लिए सौ-योजन विस्तारवाले समुद्र को पार किया है।

यथारूपां यथावर्णां यथालक्ष्मीं च निश्चिताम्।
अश्रौषं राघवस्याहं सेयमासादिता मया॥ १३॥

मैंने श्रीराम के मुख से उस देवी का जैसा रूप रङ्ग और कान्ति सुनी थी वैसी ही सीता मैंने देख ली है।

विररामैवमुक्त्वासौ वाचं वानरपुङ्गवः।
जानकी चापि तत् श्रुत्वा विस्मयं परमं गता॥ १४॥

वानरश्रेष्ठ हनुमान् इतना कहकर चुप हो गये और सीताजी भी इन बातों को सुनकर चकित हो गईं।

ततः सा वक्रकेशान्ता सुकेशी केशसंवृतम्।
उन्नम्य वदनं भीरुः शिंशपामन्ववैक्षत॥ १५॥

तदनन्तर घुँघराले और काले महीन केशोंवाली सीता अपने केशाच्छादित मुखमण्डल को ऊपर उठाकर शिंशपा वृक्ष की ओर देखने लगी।

सा तु दृष्ट्वा हरिश्रेष्ठं विनीतवदुपस्थितम्।
मैथिली चिन्तयामास स्वप्नोऽयमिति भामिनी॥ १६॥

विनम्र भाव से उपस्थित उस कपिश्रेष्ठ हनुमान् को देख सीताजी ने सोचा—'कहीं मैं स्वप्न तो नहीं देख रही।'

➤ एकविंशः सर्गः ➤ (२१)

हनुमान् तथा सीता का वार्तालापारम्भ—

सोऽवतीर्य द्रुमात्तस्माद्विद्रुमप्रतिमाननः।
विनीतवेषः कृपणः प्रणिपत्योपसृत्य च॥ १॥
तामब्रवीन्महातेजा हनुमान्मारुतात्मजः।
शिरस्याञ्जलिमाधाय सीतां मधुरया गिरा॥ २॥

इतने में मूँगे के समान लालमुखवाले[१] महातेजस्वी हनुमान्जी ने वृक्ष की ऊँची शाखा से नीची शाखा पर उतर कर[२]—इस प्रकार सीता के कुछ निकट होकर—उसे हाथ जोड़कर प्रणाम किया। तत्पश्चात् पवनपुत्र हनुमान् नम्रतापूर्वक, दीनभाव से मधुर वाणी से बोले—

का नु पद्मपलाशाक्षि क्लिष्टकौशेयवासिनि।
द्रुमस्य शाखामालम्ब्य तिष्ठसि त्वमनिन्दिते॥ ३॥

हे कमलनयनी! हे सर्वाङ्गसुन्दरी! हे मलिन पीत, रेशमीवस्त्र-धारिणी! वृक्ष की शाखा का अवलम्बन करके खड़ी रहनेवाली तुम कौन हो?

रावणेन जनस्थानाद्बलादपहृता यदि।
सीता त्वमसि भद्रं ते तन्मामाचक्ष्व पृच्छतः॥ ४॥

तुम्हारा कल्याण हो। यदि तुम रावण द्वारा जनस्थान से बलपूर्वक हरी हुई सीता ही हो तो जो कुछ मैं पूछ रहा हूँ उसका उत्तर दो।

यथा हि तव वै दैन्यं रूपं चाप्यतिमानुषम्।
तपसा चान्वितो वेषस्त्वं राममहिषी ध्रुवम्॥ ५॥

जैसी आपकी दीन दशा है, जैसा अद्भुत आपका रूप है और जैसा आपका तपस्या से युक्त वेश है—इससे जान पड़ता है कि आप निश्चित रूप से श्रीराम

१. यहाँ आदि कवि ने केवल हनुमान्जी के मुख को ही **'विद्रुमप्रतिमाननः'**—मूँगे जैसा लाल बताया है, अतः जो लोग उनके सारे शरीर को ही लाल रंग देते हैं, उन पर चोला चढ़वाते हैं वे सब अज्ञानान्धकार में ही भटक रहे हैं। प्रभु उन्हें सुमति प्रदान करें।

२. आगे श्लोक छह में हनुमान् का एक विशेषण **'द्रुमाश्रितम्'** दिया हुआ हैं, अतः यहाँ ऊँची शाखा से नीची शाखा पर उतरे—यही अर्थ ठीक है।



की पत्नी हैं।

सा तस्य वचनं श्रुत्वा रामकीर्तनहर्षिता।
उवाच वाक्यं वैदेही हनुमन्तं द्रुमाश्रितम्॥ ६॥

हनुमान्‌जी के इन वचनों को सुनकर और श्रीराम के कीर्तन से हर्षित होकर विदेहराज-कुमारी सीता वृक्ष पर बैठे हनुमान् से कहने लगी—

पृथिव्यां राजसिंहानां मुख्यस्य विदितात्मनः।
स्नुषा दशरथस्याहं शत्रुसैन्यप्रमाथिनः॥ ७॥

हे कपे! पृथिवी के समस्त राजाओं में मुख्य एवं प्रसिद्ध और शत्रुसेना को नष्ट करनेवाले चक्रवर्ती सम्राट् महाराज दशरथ की मैं पुत्रवधू हूँ।

दुहिता जनकस्याहं वैदेहस्य महात्मनः।
सीता च नाम नाम्नाऽहं भार्या रामस्य धीमतः॥ ८॥

मिथिलाधिपति महात्मा जनक की मैं पुत्री हूँ, महामति श्रीराम की मैं पत्नी हूँ। मेरा नाम सीता है।

वसतो दण्डकारण्ये तस्याहममितौजसः।
रक्षसाऽपहृता भार्या रावणेन दुरात्मना॥ ९॥

महाराज दशरथ की आज्ञा से दण्डकारण्य में बसते हुए अपरिमित बलवाले महापराक्रमी श्रीराम की पत्नी मुझको दुरात्मा रावण ने हर लिया।

द्वौ मासौ तेन मे कालो जीवितानुग्रहः कृतः।
ऊर्ध्वं द्वाभ्यां तु मासाभ्यां ततस्त्यक्ष्यामि जीवितम्॥ १०॥

उसने कृपा करके मुझे दो मास तक और जीवित रहने का समय दिया है। दो मास पश्चात् मुझे अपने प्राण त्यागने पड़ेंगे।

➤ द्वाविंशः सर्गः ➤ (२२)

रावणरूपी शंका का निवारण—

तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा हनुमान्हरियूथपः।
दुःखाद् दुःखाभिभूतायाः सान्त्वमुत्तरमब्रवीत्॥ १॥

दुःखों से सन्तप्त सीताजी के इन वचनों को सुनकर कपिश्रेष्ठ हनुमान् उन्हें सान्त्वना प्रदान करते हुए बोले—

अहं रामस्य संदेशाद्देवि दूतस्तवागतः।
वैदेही कुशली रामस्त्वां च कौशलमब्रवीत्॥ २॥

हे देवि! श्रीराम की आज्ञा से उनका सन्देश लेकर मैं दूत बनकर आपके पास आया हूँ। श्रीराम कुशलपूर्वक हैं और उन्होंने आपका कुशल-मङ्गल पूछा है।

यो ब्राह्ममस्त्रं वेदाश्च वेद वेदविदां वरः।
स त्वां दाशरथी रामो देवि कौशलमब्रवीत्॥ ३॥

हे देवि! जो ब्रह्मास्त्र चलाना जानते हैं, जो वेदों के ज्ञाता हैं, वेदों के ज्ञाता ही नहीं अपितु वेदवेत्ताओं में श्रेष्ठ हैं उन्हीं दशरथ-नन्दन श्रीराम ने आपकी कुशल पूछी है।

लक्ष्मणश्च महातेजा भर्तुस्तेऽनुचरः प्रियः।
कृतवाञ्शोकसन्तप्तः शिरसा तेऽभिवादनम्॥ ४॥

आपके पति के प्राणप्रिया अनुचर, महातेजस्वी लक्ष्मणजी ने शोकसन्तप्त होकर आपको सिर झुकाकर प्राणामाञ्जलि समर्पित की है।

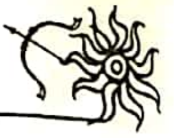
सा तयोः कुशलं देवी निशम्य नरसिंहयोः।
प्रीतिसंहृष्टसर्वाङ्गी हनुमन्तमथाब्रवीत्॥ ५॥

नरकेसरी श्रीराम और लक्ष्मणजी की कुशलता का समाचार सुनकर सीता का रोम-रोम हर्ष से पुलकित हो गया और वे हनुमान्‌जी से बोलीं—

कल्याणी बत गाथेयं लौकिकी प्रतिभाति मा।
एति जीवन्तमानन्दो नरं वर्षशतादपि॥ ६॥

''मनुष्य यदि जीवित रहे तो सौ वर्ष पश्चात् भी उसे कभी-न-कभी आनन्द प्राप्त होता ही है''—यह कल्याणमयी लौकिकी गाथा आज मुझे सत्य जान पड़ रही है।

तयोः समागमे तस्मिन्प्रीतिरुत्पादिताऽद्भुता।
परस्परेण चालापं विश्वस्तौ तौ प्रचक्रतुः॥ ७॥



सीता और हनुमान् की परस्पर भेंट होने पर उन दोनों में अद्भुत स्नेह उत्पन्न हो गया और वे दोनों एक-दूसरे पर विश्वास कर आपस में बातचीत करने लगे।

तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा हनुमान् हरियूथपः।
सीतायाः शोकदीनायाः समीपमुपचक्रमे॥ ८॥

शोकसन्तप्त सीताजी के उन वचनों को सुनकर कपिश्रेष्ठ हनुमान्‌जी सीताजी के कुछ और समीप चले गये।

यथा यथा समीपं स हनुमानुपसर्पति।
तथा तथा रावणं सा तं सीता परिशङ्कते॥ ९॥

परन्तु ज्यों-त्यों हनुमान् सीता के निकट पहुँचते जाते थे, त्यों-त्यों ''यह रावण है''—सीता की यह शंका बढ़ती जाती थी।

सीतायाश्चिन्तितं बुद्ध्वा हनुमान्मारुतात्मजः।
श्रोत्रानुकूलैर्वचनैस्तदा तां सम्प्रहर्षयन्॥ १०॥

सीता को अपने ऊपर संदेह करते देख पवनपुत्र हनुमान्‌जी कर्णप्रिय वचनों से उसे हर्षित करते हुए बोले—

नाहमस्मि तथा देवि यथा मामवगच्छसि।
विशङ्का त्यज्यतामेषा श्रद्धत्स्व वदतो मम॥ ११॥

हे देवि! तुम जो समझ रही हो वह मैं नहीं हूँ। अर्थात् मैं रावण नहीं हूँ, अतः तुम अपने सन्देह को दूर करो और मेरे कथन पर विश्वास करो।

➤ त्रयोविंशः सर्गः ➤ (२३)

अँगूठी प्रदान करना—

भूय एव महातेजा हनुमान्मारुतात्मजः।
अब्रवीत्प्रश्रितं वाक्यं सीताप्रत्ययकारणात्॥ १॥

सीता को विश्वास दिलाने के लिए महातेजस्वी पवनपुत्र हनुमान् पुनः नम्रतापूर्वक ये वचन बोले—

वानरोऽहं महाभागे दूतो रामस्य धीमतः।
रामनामाङ्कितं चेदं पश्य देव्यङ्गुलीयकम्॥ २॥

हे महाभागे! मैं वानर हूँ और महामति श्रीराम का दूत हूँ। हे देवि! यह राम नाम से अङ्कित अँगूठी है। इस पर दृष्टिपात करो।

प्रत्ययार्थं तवानीतं तेन दत्तं महात्मना।
समाश्वसिहि भद्रं ते क्षीणदुःखफला ह्यसि॥ ३॥

महात्मा राम द्वारा प्रदत्त यह अँगूठी मैं आपके विश्वास के लिए लाया हूँ। आपका कल्याण हो। अब आप धैर्य धारण करो और समझ लो कि आपके दुःखों का अन्त हो गया है।

गृहीत्वा प्रेक्षमाणा सा भर्तुः करविभूषणम्।
भर्तारमिव सम्प्राप्ता जानकी मुदिताऽभवत्॥ ४॥

सीता अपने पति के हाथ की शोभा बढ़ानेवाली उस अँगूठी को हाथ में ले और स्नेहमयी दृष्टि से उसे देखती ऐसी प्रसन्न हुई मानो उसे राम ही मिल गये हों।

ततः सा ह्रीमती बाला भर्तृसन्देशहर्षिता।
परितुष्टा प्रियं कृत्वा प्रशशंस महाकपिम्॥ ५॥

पति का सन्देश पाकर वह लज्जाशील बाला सीता अत्यधिक हर्षित एवं सन्तुष्ट हुई और हनुमान् को अपना प्रिय पात्र मानकर उनकी प्रशंसा करने लगी—

विक्रान्तस्त्वं समर्थस्त्वं प्राज्ञस्त्वं वानरोत्तम।
येनेदं राक्षसपदं त्वयैकेन प्रधर्षितम्॥ ६॥

हे कपिश्रेष्ठ! तुम महान् पराक्रमी हो, पूर्ण समर्थ हो और महाबुद्धिमान् भी हो, क्योंकि तुमने अकेले ही रावण की राजधानी इस लङ्का को मथ डाला है।

शतयोजनविस्तीर्णः सागरो मकरालयः।
विक्रमश्लाघनीयेन क्रमता गोष्पदीकृतः॥ ७॥

सौ योजन विस्तारवाले, मकर आदि जन्तुओं से परिपूर्ण इस समुद्र को अपेन पराक्रम से लाँघते हुए



तुमने इसे गोष्पद[1] के तुल्य ही बना दिया है।

न हि त्वां प्राकृतं मन्ये वानरं वानरर्षभ।
यस्यते नास्ति संत्रासो रावणान्नापि सम्भ्रमः॥ ८॥

हे वानरोत्तम! मैं आपको साधारण वानर नहीं मान सकती, क्योंकि न तो आप भयंकर समुद्र से भयभीत हुए और रावण के कारण उद्विग्न हुए।

अर्हसे च कपिश्रेष्ठ मया समभिभाषितुम्।
यद्यसि प्रेषितस्तेन रामेण विदितात्मना॥ ९॥

हे कपिश्रेष्ठ! जब आत्मज्ञानी अथवा लोक-प्रसिद्ध श्रीराम ने तुम्हें मेरे समीप भेजा है तब आप खुले हृदय से मुझसे वार्तालाप कर सकते हैं।

दिष्ट्या स कुशली रामो धर्मात्मा सत्यसङ्गरः।
लक्ष्मणश्च महातेजाः सुमित्रानन्दवर्धनः॥ १०॥

यह प्रसन्नता और सौभाग्य की बात है कि धर्मात्मा और सत्यप्रतिज्ञ श्रीराम तथा सुमित्रा के आनन्द को बढ़ानेवाले महातेजस्वी लक्ष्मण कुशलपूर्वक हैं।

कुशली यदि काकुत्स्थः किं न सागरमेखलाम्।
महीं दहति कोपेन युगान्ताग्निरिवोत्थितः॥ ११॥

यदि श्रीराम सकुशल हैं तो मेरे उद्धार के लिए समुद्र से घिरी लङ्कापुरी को प्रलयाग्नि के समान अपने क्रोध से भस्म क्यों नहीं कर देते?

अथवा शक्तिमन्तौ तौ सुराणामपि निग्रहे।
ममैव तु न दुःखानामस्ति मन्ये विपर्ययः॥ १२॥

अथवा वे दोनों देवताओं को भी दण्ड देने में समर्थ हैं, परन्तु दुर्भाग्य से अभी मेरे ही दुःखों का अन्त नहीं आया है।

कच्चिन्न व्यथितो रामः कच्चिन्न परितप्यते।
उत्तराणि च कार्याणि कुरुते पुरुषोत्तमः॥ १३॥

(अच्छा यह तो बताओ) मर्यादा-पुरुषोत्तम श्रीराम दुःख का अनुभव तो नहीं करते अथवा सन्ताप तो नहीं करते? मेरे उद्धार के लिए प्रयत्न तो करते हैं?

वानराधिपतिः श्रीमान्सुग्रीवः कच्चिदेष्यति।
मत्कृते हरिभिर्वीरैर्वृतो दन्तनखायुधैः॥ १४॥

क्या वानरराज श्रीमान्? सुग्रीव दन्त और नख रूपी अस्त्रों से लड़नेवाले अपने वानर सैनिकों सहित मेरे उद्धार के लिए यहाँ आयेंगे?

कच्चिच्च लक्ष्मणः शूरः सुमित्रानन्दवर्धनः।
अस्त्रविच्छरजालेन राक्षसान्विधमिष्यति॥ १५॥

क्या सुमित्रा के आनन्द को बढ़ानेवाले अस्त्रवित् वीर लक्ष्मण अपनी भीषण बाण-वर्षा से शत्रुओं का विध्वंस करेंगे?

रौद्रेण कच्चिदस्त्रेण रामेण निहतं रणे।
द्रक्ष्याम्यल्पेन कालेन रावणं ससुहृज्जनम्॥ १६॥

क्या मैं शीघ्र ही बन्धु-बान्धवों सहित रावण को युद्ध में श्रीराम के रौद्रास्त्र (अथवा भयंकर बाणों से) से मरा हुआ देखूँगी?

सीताया वचनं श्रुत्वा मारुतिर्भीमविक्रमः।
शिरस्यञ्जलिमाधाय वाक्यमुत्तरमब्रवीत्॥ १७॥

भीम पराक्रमी पवनपुत्र हनुमान्‌जी सीता के इन वचनों को सुनकर हाथ जोड़ और मस्तक झुकाकर बोले—

न त्वामिहस्थां जानीते रामः कमललोचने।
तेन त्वां नानयत्याशु शचीमिव पुरन्दरः॥ १८॥

हे कमललोचने! "तुम यहाँ हो"—यह बात श्रीराम को ज्ञात नहीं है, इसीलिए वे तुम्हें शीघ्र यहाँ से वैसे ही नहीं ले गये जैसे इन्द्र अपनी पत्नी शाची को (अनुह्लाद दैत्य के यहाँ से) ले आये थे।

श्रुत्वैव तु वचो मह्यं क्षिप्रमेष्यति राघवः।
चमूं प्रकर्षन् महतीं हर्यृक्षगणसङ्कुलाम्॥ १९॥

जब मैं यहाँ से जाकर आपका वृत्तान्त बताऊँगा तब उस सन्देश को सुनते ही श्रीराम ऋक्ष और वानर जाति की भारी सेना के साथ लङ्का में आएँगे।

---

१. वर्षाऋतु में नरम भूमि पर गाय का पैर पड़ने से उस पदचिह्न में जितना पानी आ जाता है उसे गोष्पद कहते हैं।



विष्टम्भयित्वा बाणौघैरक्षोभ्यं वरुणालयम्।
करिष्यति पुरीं लङ्कां काकुत्स्थः शान्तराक्षसाम्॥ २०॥

वे अपने बाणों से इस अक्षोभ्य समुद्र को पाटकर और राक्षसों का विध्वंस करके लङ्कापुरी को शान्त कर देंगे।

➤ चतुर्विंशः सर्गः ➤ (२४)

सीता का हनुमान् के साथ जाने का अनौचित्य—

सीता तद्वचनं श्रुत्वा पूर्णचन्द्रनिभानना।
हनुमन्तमुवाचेदं धर्मार्थसहितं वचः॥ १॥

पूर्ण चन्द्रमा के समानमुखवाली सीता हनुमान्जी के इन वचनों को सुनकर उनसे धर्मयुक्त ये वचन बोली—

ऐश्वर्ये वा सुविस्तीर्णे व्यसने वा सुदारुणे।
रज्ज्वेव पुरुषं बद्ध्वा कृतान्तः परिकर्षति॥ २॥

मनुष्य चाहे महान् ऐश्वर्य का उपभोग करता हो अथवा महादारुण दुःख भोगता हो—दोनों अवस्थाओं में कर्मफल-प्रदाता दैव, मनुष्य को गले में रस्सी बाँधकर अपनी ओर खींचता रहता है।

विधिर्नूनमसंहार्यः प्राणिनां प्लवगोत्तम।
सौमित्रिं मां च रामं च व्यसनैः पश्य मोहितान्॥ ३॥

हे वानरश्रेष्ठ! प्रारब्ध का परिवर्तन मनुष्य की शक्ति से बाहर की बात है। मुझे, लक्ष्मण और राम को ही देख लो जो आपत्ति में फँसकर किंकर्तव्यविमूढ़ हो रहे हैं।

शोकस्यास्य कदा पारं राघवोऽधिगमिष्यति।
प्लवमानः परिश्रान्तो हतनौः सागरे यथा॥ ४॥

नौका के टूट जाने पर समुद्र में गिरकर तैरते हुए और थके हुए मनुष्य के समान श्रीराम पता नहीं कब इस शोकसागर से पार होंगे?

राक्षसानां वधं कृत्वा सूदयित्वा च रावणम्।
लङ्कामुन्मूलितां कृत्वा कदा द्रक्ष्यति मां पतिः॥ ५॥

मेरे पति श्रीराम राक्षसों को मार, रावण का वध करके लङ्का की ईंट-से-ईंट बजाकर न जाने कब मुझे देखेंगे।

स वाच्यः सन्त्वरस्वेति यावदेव न पूर्यते।
अयं संवत्सरः कालस्तावद्धि मम जीवितम्॥ ५॥

हे वानर! तुम जाकर श्रीराम से कहना कि मेरे उद्धार के लिए शीघ्रता करें। जब तक इस वर्ष की समाप्ति नहीं होती तभी तक मेरे जीवन की अवधि है।

वर्तते दशमो मासो द्वौ तु शेषौ प्लवङ्गम।
रावणेन नृशंसेन समयो यः कृतो मम॥ ७॥

इस वर्ष का यह दसवाँ मास चल रहा है। इस की समाप्ति में अब केवल दो मास शेष रहे हैं। क्रूर रावण ने मेरे जीवन की इतनी ही अवधि निर्धारित की है।

विभीषणेन च भ्रात्रा मम निर्यातनं प्रति।
अनुनीतः प्रयत्नेन न च तत्कुरुते मतिम्॥ ८॥

इसके कनिष्ठ भ्राता विभीषण ने मेरे लौटाने के लिए अनेक बार प्रयत्नपूर्वक अनुनय-विनय किया, परन्तु वह उसकी बात नहीं मानता।

मम प्रतिप्रदानं हि रावणस्य न रोचते।
रावणं मार्गते संख्ये मृत्युः कालवशं गतम्॥ ९॥

रावण को मेरा लौटा देना पसन्द नहीं है, क्योंकि उसके सिर पर मृत्यु सवार है। निश्चय ही मृत्यु युद्धक्षेत्र में रावण के वध का अवसर ढूँढ़ रही है।

आशंसेयं हरिश्रेष्ठ क्षिप्रं मां प्राप्स्यते पतिः।
अन्तरात्मा हि मे शुद्धस्तस्मिंश्च बहवो गुणाः॥ १०॥

वह वानरश्रेष्ठ! मुझे पूरा विश्वास है कि मेरे पति श्रीराम अब शीघ्र ही मुझे मिलेंगे क्योंकि यह मेरी अन्तरात्मा की ध्वनि है और श्रीराम के बहुत से गुण



हैं।

उत्साहः पौरुषं सत्त्वमानृशंस्यं कृतज्ञता।
विक्रमश्च प्रभावश्च सन्ति वानर राघवे॥ ११॥

हे वानर! उत्साह, पुरुषार्थ, धैर्य, दया, कृतज्ञता, पराक्रम और प्रभाव—ये सभी गुण रघुकुल-शिरोमणि श्रीराम में हैं।

शरजालांशुमाञ्छूरः कपे सामदिवाकरः।
शत्रुरक्षोमयं तोयमुपशोषं नयिष्यति॥ १२॥

हे कपे! रामरूपी सूर्य अपनी बाणरूपी किरणों से शत्रु राक्षसरूपी जल को शीघ्र ही शुष्क कर डालेंगे।

इति सञ्जल्पमानां तां रामार्थे शोककर्षिताम्।
अश्रुसम्पूर्णनयनामुवाच वचनं कपिः॥ १३॥

इस प्रकार श्रीराम के विषय में बातें करती हुई, शोकसन्तप्त और आँखों से आँसू बहाती हुई सीता से हनुमान्जी कहने लगे—

श्रुत्वैव तु वचो मह्यं क्षिप्रमेष्यति राघवः।
चमूं प्रकर्षन्महतीं हर्यृक्षगणसङ्कुलाम्॥ १४॥

हे सीते! मेरे मुख से आपका संदेशा पाते ही श्रीराम ऋक्ष और वानरों से युक्त बहुत बड़ी सेना लेकर शीघ्र ही यहाँ आ जायेंगे।

अथवा मोचयिष्यामि त्वामद्यैव वरानने।
अस्माद् दुःखादुपारोह मम पृष्ठमनिन्दिते॥ १५॥

अथवा हे वरानने! मैं आज ही आपको इस भयंकर विपत्ति और रावण के बन्दीगृह से मुक्त कर देता हूँ। हे अनिन्दिते! तुम मेरी पीठ पर (विमान) बैठ जाओ।

त्वां तु पृष्ठगतां कृत्वा सन्तरिष्यामि सागरम्।
शक्तिरस्ति हि मे वोढुं लङ्कामपि सरावणम्॥ १६॥

आपको अपनी पीठ पर बैठाकर मैं समुद्र पार हो जाऊँगा। (यह मत समझना कि मै ऐसा न कर सकूँगा) मुझमें इतनी शक्ति है कि मैं रावण सहित लङ्का को भी उठाकर ले जा सकता हूँ।

यथैवाहमिह प्राप्तस्तथैवाहमसंशयम्।
यास्यामि पश्य वैदेहि त्वामुद्यम्य विहायसम्॥ १७॥

हे विदेह-राजकुमारी! जिस प्रकार मैं उस पार से यहाँ आया हूँ उसी प्रकार तुम्हें अपने साथ लिये हुए निश्चय ही मैं आकाश-मार्ग से उस पार चला जाऊँगा।

मैथिली तु हरिश्रेष्ठात् श्रुत्वा वचनमद्भुतम्।
हर्षविस्मितसर्वाङ्गी हनुमन्तमथाब्रवीत्॥ १८॥

कपिश्रेष्ठ हनुमान्जी के इन अद्भुत वचनों को सुनकर सीता विस्मित और पुलकित गात होकर हनुमान्जी से कहने लगी।

अयुक्तं तु कपिश्रेष्ठ मम गन्तुं त्वया सह।
वायुवेगसवेगस्य वेगो मां मोहयेत्तव॥ १९॥

हे वानरश्रेष्ठ! मेरा तुम्हारे साथ चलना ठीक नहीं क्योंकि वायु के समान तुम्हारी शीघ्रगति मुझे मूर्छित कर देगी।

अहमाकाशमापन्ना ह्युपर्युपरि सागरम्।
प्रपतेयं हि ते पृष्ठाद्भयाद्वेगेन गच्छतः॥ २०॥
पतिता सागरे चाहं तिमिनक्रझषाकुले।
भवेयमाशु विवशा यादसामन्नमुत्तमम्॥ २१॥

आकाश-मार्ग से बड़े वेग से जाते हुए, मैं तुम्हारी पीठ से समुद्र में गिर जाऊँगी तथा मीन, नक्र और मगरमच्छ आदि जन्तुओं से पूर्ण समुद्र में गिरकर मैं विवश दशा में शीघ्र ही जलजन्तुओं का आहार बन जाऊँगी।

न च शक्ष्ये त्वया सार्धं गन्तुं शत्रुविनाशन।
कलत्रवति संदेहस्त्वय्यपि स्यादसंशयः॥ २२॥

हे शत्रुमर्दन! मैं तुम्हारे साथ नहीं जा सकूँगी, क्योंकि मुझ स्त्री-सहित तुम्हें जाते देखकर निश्चय ही तुम पर लङ्का-वासियों को सन्देह होगा।

ह्रियमाणां तु मां दृष्ट्वा राक्षसा भीमविक्रमाः।
अनुगच्छेयुरादिष्टा रावणेन दुरात्मना॥ २३॥

यहाँ से मेरा हरण होते हुए देखकर, दुरात्मा रावण की आज्ञा से भीषण पराक्रमी राक्षस निश्चय ही तुम्हारा पीछा करेंगे।

युध्यमानस्य रक्षोभिस्तव तैः क्रूरकर्मभिः।
प्रपतेयं हि ते पृष्ठाद्भयार्ता कपिसत्तम॥ २४॥



हे कपिश्रेष्ठ! जब तुम क्रूरकर्मा, भयंकर राक्षसों से युद्ध करोगे तब भयभीत हो मैं अवश्य ही नीचे गिर जाऊँगी।

अहं वापि विपद्येयं रक्षोभिरभितर्जिता।
त्वत्प्रयत्नो हरिश्रेष्ठ भवेन्निष्फल एव तु॥ २५॥

अथवा राक्षसों के गर्जन-तर्जन से भयभीत होकर मेरे प्राण भी निकल सकते हैं। तब हे कपिश्रेष्ठ! तुम्हारा सारा परिश्रम व्यर्थ हो जायेगा।

कामं त्वमसि पर्याप्तो निहन्तुं सर्वराक्षसान्।
राघवस्य यशो हीयेत्त्वया शस्तैस्तु राक्षसैः॥ २६॥

यह भी सम्भव है कि तुम उन सब राक्षसों को अकेले ही समाप्त कर दो, परन्तु तुम्हारे द्वारा राक्षसों का वध होने पर रघुकुल-शिरोमणि श्रीराम के यश को बट्टा लग जायेगा।

अथवाऽऽदाय रक्षांसि न्यसेयुः संवृते हि माम्।
यत्र ते नाभिजानीयुर्हरयो नापि राघवौ॥ २७॥

(तुम्हारे साथ जाने में एक दोष यह भी है कि) यदि राक्षसों ने मुझे पकड़ लिया और लङ्का में ले आये तो फिर वे मुझे किसी ऐसे स्थान पर छिपा देंगे जहाँ न तो कोई वानर ही मुझे देख सकेगा और न राम-लक्ष्मण ही मुझे पा सकेंगे।

भर्तृभक्तिं पुरस्कृत्य रामादन्यस्य वानर।
न स्पृशामि शरीरं तु पुंसो वानरपुङ्गव॥ २८॥

हे वानरश्रेष्ठ! पातिव्रत्य नियम को देखते हुए मैं श्रीराम के अतिरिक्त किसी दूसरे पुरुष के शरीर का स्पर्श (स्वेच्छा से) भी नहीं कर सकती।

यदहं गात्रसंस्पर्शं रावणस्य बलाद् गता।
अनीशा किं करिष्यामि विनाथा विवशा सती॥ २९॥

मैंने जो रावण के शरीर का स्पर्श किया वह बलात् हुआ। उस समय मैं रक्षक-हीन, अनाथ और विवश थी। ऐसी दशा में मैं कर ही क्या सकती थी?

यदि रामो दशग्रीवमिह हत्वा सबान्धवम्।
मामितो गृह्य गच्छेत् तत्तस्य सदृशं भवेत्॥ ३०॥

यदि श्रीराम बन्धु-बान्धवों सहित रावण को मारकर मुझे यहाँ से ले जायें तो यह कार्य उनकी मर्यादा के अनुरूप होगा।

➤ पञ्चविंशः सर्गः ➤ (२५)

सीता का हनुमान् को चूड़ामणि प्रदान करना—

ततः स कपिशार्दूलस्तेन वाक्येन हर्षितः।
सीतामुवाच तत् श्रुत्वा वाक्यं वाक्यविशारदः॥ १॥

वाक्यविशारद वानरश्रेष्ठ हनुमान् सीताजी के इन वचनों को सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुए और बोले—

युक्तरूपं त्वया देवि भाषितं शुभदर्शने।
सदृशं स्त्रीस्वभावस्य साध्वीनां विनयस्य च॥ २॥

हे शुभदर्शन देवि! तुमने स्त्री-स्वभाव-सुलभ और पतिव्रता स्त्रियों के चरित्र के अनुकूल ठीक ही कहा है।

स्त्रीत्वान्न त्वं समर्थासि सागरं व्यतिवर्तितुम्।
मामधिष्ठाय विस्तीर्णं शतयोजनमायतम्॥ ३॥

स्त्री होने के कारण मेरी पीठ पर सवार होकर तुम सौ योजन विस्तीर्ण समुद्र को पार करने में समर्थ नहीं हो—यह बात उचित ही है।

द्वितीयं कारणं यच्च ब्रवीषि विनयान्विते।
रामादन्यस्य नार्हामि संस्पर्शमिति जानकि॥ ४॥
एतत्ते देवि सदृशं पत्न्यास्तस्य महात्मनः।
का ह्यन्या त्वामृते देवि ब्रूयाद्वचनमीदृशम्॥ ५॥

हे विनयशीले जानकि! तुमने मेरे साथ न जाने का जो दूसरा हेतु दिया है कि—''श्रीराम के अतिरिक्त मैं अन्य किसी पुरुष का अपनी इच्छा से स्पर्श नहीं कर सकती''—हे देवि! ये वचन महात्मा राम की धर्मपत्नी के ही कहने योग्य हैं। भला आपको छोड़कर (ऐसी अवस्था में भी) और कौन स्त्री ऐसे वचन



कह सकती है ?

श्रोष्यते चैव काकुत्स्थः सर्वं निरवशेषतः।
चेष्टितं यत्त्वया देवि भाषितं मम चाग्रतः॥ ६॥

हे देवि! आपने मेरे साथ जैसा बर्ताव किया है और जो बातें कही हैं—उन सबको श्रीराम मेरे मुख से ज्यों-का-त्यों सुन लेंगे।

कारणैर्बहुभिर्देवि रामप्रियचिकीर्षया।
स्नेहप्रस्कन्नमनसा मयैतत्समुदीरितम्॥ ७॥

लङ्कायाः दुष्प्रवेशत्वाद्दुस्तरत्वान्महोदधेः।
सामर्थ्यादात्मनश्चैव मयैतत्समुदीरितम्॥ ८॥

हे देवि! मैंने आपसे जो अपने साथ चलने के लिए कहा, उसके अनेक कारण हैं। उनमें से मुख्य तो श्रीराम का प्रिय करने की इच्छा थी, दूसरा यह कि मेरा मन स्नेह से द्रवित हो रहा था, तीसरे लङ्का दुर्गमनीय होने से इसमें हरेक प्रविष्ट नहीं हो सकता, चौथे समुद्र का लांघना भी कठिन है। इन सब बातों के अतिरिक्त मुझे अपनी शक्ति और सामर्थ्य पर पूर्ण विश्वास है, इसीलिए मैंने साथ चलने के लिए कहा था।

इच्छामि त्वां समानेतुमद्यैव रघुबन्धुना।
गुरुस्नेहेन भक्त्या च नान्यथैतदुदाहृतम्॥ ९॥

श्रीराम का मेरे प्रति स्नेह और मेरी उनके प्रति भक्ति है—इसी से मेरी यह इच्छा हुई कि मैं आज ही तुम्हें श्रीराम से मिला दूँ—इसके अतिरिक्त और कोई कारण नहीं था।

यदि नोत्सहसे यातुं मया सार्धमनिन्दिते।
अभिज्ञानं प्रयच्छ त्वं जानीयाद्राघवो हि यत्॥ १०॥

हे अनिन्दिते! यदि आपकी मेरे साथ चलने की इच्छा नहीं है तो आप मुझे कोई चिह्नानी दे दीजिए जिसे श्रीराम पहचान सकें और उन्हें विश्वास हो जाये कि मैं आपसे मिल आया हूँ।

ततो वस्त्रगतं मुक्त्वा दिव्यं चूडामणिं शुभम्।
प्रदेयो राघवायेति सीता हनुमते ददौ॥ ११॥

हनुमान्‌जी के ऐसा कहने पर सीता ने, वस्त्र के आँचल से खोलकर, एक सुन्दर चूड़ामणि (शिर का आभूषण) हनुमान्‌जी को दी और कहा कि इसे श्रीराम को दे देना।

स तं मणिवरं गृह्य श्रीमान्प्लवगसत्तमः।
प्रणम्य शिरसा देवीं गमनायोपचक्रमे॥ १२॥

वानरश्रेष्ठ श्रीमान् हनुमान् उस श्रेष्ठ चूड़ामणि को लेकर और सीताजी को झुककर प्रणाम कर वहाँ से चलने के लिए उद्यत हो गये।

तमुत्पातकृतोत्साहमवेक्ष्य हरिपुङ्गवम्।
अश्रुपूर्णमुखी दीना उवाच जनकात्मजा॥ १३॥

हनुमान्‌जी को उड़ान भरने के लिए तैयार देख सीता आँखों में आँसू भरकर कहने लगी—

हनुमन्सिंहसङ्काशौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ।
सुग्रीवं च सहामात्यं सर्वान्ब्रूया ह्यनामयम्॥ १४॥

हे हनुमन्! सिंह के समान पराक्रमी दोनों भाई श्रीराम और लक्ष्मण को तथा मन्त्रिमण्डल सहित सुग्रीव आदि वानरों को मेरा कुशलक्षेम कहना।

यथा च स महाबाहुर्मां तारयति राघवः।
अस्माद्दुःखाम्बुसंरोधात्त्वं समादधतुमर्हसि॥ १५॥

और महाबाहु श्रीराम इस विपत्ति के महान् सागर से जिस प्रकार मेरा उद्धार करें आप वह उपाय करना।

➤ षड्विंशः सर्गः ➤ (२६)

अशोक-वाटिका-विध्वंस—

स च वाग्भिः प्रशस्ताभिर्गमिष्यन्पूजितस्तया।
तस्माद्देशादपाक्रम्य चिन्तयामास वानरः॥ १॥

सुन्दर वचनावली के द्वारा सीता से सम्मानित हो, गमन करने की इच्छा से हनुमान् जी उस स्थान से हटकर दूसरे स्थान पर जाकर विचारने लगे—



अल्पशेषमिदं कार्यं दृष्टेयमसितेक्षणा।
त्रीनुपायानतिक्रम्य चतुर्थ इह दृश्यते॥ २॥

कृष्ण नेत्रवाली सीताजी का दर्शन तो कर लिया, किन्तु एक छोटा-सा कार्य शेष रह गया है अर्थात् शत्रुशक्ति का परिचय प्राप्त करना। इस कार्य को करने के लिए पहले तीन उपायों—साम, दान और भेद से तो कार्य होता दिखाई नहीं देता। हाँ, चौथे उपाय दण्ड अथवा बल-प्रदर्शन से कार्य हो सकता है।

कार्ये कर्मणि निर्दिष्टे यो बहून्यपि साधयेत्।
पूर्वाकार्याविरोधेन स कार्यं कर्तुमर्हति॥ ३॥

सर्वप्रथम मुख्य कार्य को सम्पूर्ण कर और मुख्य कार्य को हानि न पहुँचाते हुए जो दूत और भी कई कार्य कर डाले वहीं दूत वस्तुतः कार्य करने योग्य कहा जाता है।

कथं नु खल्वद्य भवेत्सुखागतं
प्रसह्य युद्धं मम राक्षसैः सह।
तथैव खल्वात्मबलं च सारवत्
समानयेन्मां च रणे दशाननः॥ ४॥

इस समय मैं क्या करूँ जिससे राक्षसों के साथ सहज ही मेरा युद्ध ठन जाये और रावण मुझे युद्ध की उत्कृष्टता-अपकृष्टता जान ले।

इदमस्य नृशंसस्य नन्दनोपममुत्तमम्।
वनं नेत्रमनःकान्तं नानाद्रुमलतायुतम्॥ ५॥
इदं विध्वंसयिष्यामि शुष्कं वनमिवानलः।
अस्मिन्भग्ने ततः कोपं करिष्यति दशाननः॥ ६॥

(तब हनुमान्‌जी मन-ही-मन में कहने लगे कि बस सबसे सहज उपाय यही है कि) इस क्रूर रावण के इस नन्दन-कानन के तुल्य, नयनाभिराम, मन को प्रसन्नता देनेवाले, नाना लताओं और विविध प्रकार के वृक्षों से युक्त इस अशोक-वाटिका को मैं वैसे ही नष्ट कर डालूँ जैसे अग्नि सूखे वन को भस्म कर डालती है। इस वन के नष्ट होने पर रावण अवश्य ही क्रुद्ध होगा।

ततस्तु हनुमान्वीरो बभञ्ज प्रमदावनम्।
मत्तद्विजसमाघुष्टं नानाद्रुमलतायुतम्॥ ७॥

तब वीर हनुमान् ने मतवाले पक्षियों से कूजित तथा विविध प्रकार के वृक्षों से सुशोभित रावण की उस अशोक-वाटिका का विध्वंस कर डाला।

ततः पक्षिनिनादेन वृक्षभङ्गस्वनेन च।
बभूवुस्त्राससम्भ्रान्ताः सर्वे लङ्कानिवासिनः॥ ८॥

वाटिकाध्वंस के समय पक्षियों के तीव्र कोलाहल और वृक्षों के टूटकर गिरने के भयंकर शब्द से सम्पूर्ण लङ्का-निवासियों में भयंकर त्रास उत्पन्न हो गया।

ततो गतायां निद्रायां राक्षस्यो विकृताननाः।
तद्वनं ददृशुर्भग्नं तं च वीरं महाकपिम्॥ ९॥

कोलाहल से राक्षसियों की निद्रा भङ्ग होने पर उन भयंकर आकृतिवाली राक्षसियों ने ध्वस्त वन और महावीर हनुमान् को देखा।

ततस्तं गिरिसङ्काशमतिकायं महाबलम्।
राक्षस्यो वानरं दृष्ट्वा पप्रच्छुर्जनकात्मजाम्॥ १०॥

उस पर्वताकार, विशालकाय और महाबलवान् हनुमान्‌जी को देखकर राक्षसियाँ जनकनन्दिनी सीताजी से पूछने लगीं—

कोऽयं कस्य कुतो वाऽयं किं निमित्तमिहागतः।
कथं त्वया सहानेन संवादः कृत इत्युत॥ ११॥

हे सीते! यह कौन है? किसका भेजा हुआ यहाँ आया है? कहाँ से आया है और किसलिए आया है? तुमने इससे क्यों और क्या बातचीत की?

अथाब्रवीत्तदा साध्वी सीता सर्वाङ्गसुन्दरी।
रक्षसां भीमरूपाणां विज्ञाने मम का गतिः॥ १२॥

उनके ऐसा पूछने पर सर्वाङ्गसुन्दरी सीता ने उन्हें उत्तर देते हुए कहा—कामरूपी भयंकर राक्षसों की माया भला मैं क्या जान सकती हूँ?

यूयमेवाभिजानीत योऽयं यद्वा करिष्यति।
अहिरेव ह्यहेः पादान्विजानाति न संशयः॥ १३॥

यह तो तुम्हीं जानो कि यह कौन है और क्या करेगा, क्योंकि साँप के पैरों को साँप ही पहचान



सकता है।

अहमप्यस्य भीतास्मि नैनं जानामि को न्वयम्।
वेद्मि राक्षसमेवैनं कामरूपिणमागतम्॥ १४॥

मैं स्वयं भी बहुत भयभीत हो रही हूँ। मैं नहीं जानती, यह कौन है। अनुमान से मैं यह समझती हूँ यह स्वच्छन्द विचरण करनेवाला कोई राक्षस है।

वैदेह्या वचनं श्रुत्वा राक्षस्यो विद्रुता दिशः।
स्थिताः काश्चिद्गताः काश्चिद्रावणाय निवेदितुम्॥ १५॥

सीताजी की इन बातों को सुनकर वे राक्षसियाँ चारों ओर भाग खड़ी हुईं। कोई तो भयभीत होकर वहाँ से हटकर दूर खड़ी हो गई और कुछ यह वृत्तान्त सुनाने के लिए रावण के पास चली गईं।

रावणस्य समीपे तु राक्षस्यो विकृताननाः।
विरूपं वानरं भीममाख्यातुमुपचक्रमुः॥ १६॥

उन विकराल मुखवाली राक्षसियों ने रावण के समीप जाकर उस भीषण आकृतिवाले विकराल वानर का सम्पूर्ण वृत्तान्त रावण से निवेदन किया।

अशोकवनिकामध्ये राजन्भीमवपुः कपिः।
सीतया कृतसंवादस्तिष्ठत्यमितविक्रमः॥ १७॥

वे कहने लगीं—हे राजन्! अशोकवाटिका में एक विशालकाय वानर आया हुआ है। उस अमित पराक्रमी ने सीताजी से वार्तालाप भी किया है और वह अभी तक वहीं विद्यमान है।

तस्योग्ररूपस्योग्रं त्वं दण्डमाज्ञातुमर्हसि।
सीता सम्भाषिता येन तद्वनं च विनाशितम्॥ १८॥

हे राजन्! आप उस भयङ्कर रूपधारी वानर को कठोर दण्ड दें, क्योंकि एक तो उसने सीता के साथ सम्भाषण किया है दूसरे अशोकवन को नष्ट किया है।

राक्षसीनां वचः श्रुत्वा रावणो राक्षसेश्वरः।
हुताग्निरिव जज्वाल कोपसंवर्तितेक्षणः॥ १९॥

राक्षसियों की इन बातों को सुनकर राक्षसराज रावण हुताग्नि के समान प्रज्ज्वलित हो उठा और क्रोध के मारे उसकी आँखें इधर-उधर काँपने लगीं।

तस्य क्रुद्धस्य नेत्राभ्यां[१] प्रापतन्नस्त्रबिन्दवः।
दीप्ताभ्यामिव दीपाभ्यां सार्चिषः स्नेहबिन्दवः॥ २०॥

मारे क्रोध के उसकी आँखों से इस प्रकार बूँदे गिरने लगीं मानो जलते हुए दो दीपकों में से ज्वाला-सहित तेल की बूँदें टपकती हों।

आत्मनः सदृशाञ्शूरान्किङ्करान्नाम राक्षसान्।
व्यादिदेश महातेजा निग्रहार्थं हनूमतः॥ २१॥

तदनन्तर महातेजस्वी रावण ने अपने समान शूरवीर किङ्कर नामवाले राक्षसों की टुकड़ी को हनुमान् को दण्ड देने अथवा पकड़ने के लिए भेजा।

ते कपिं तं समासाद्य तोरणस्थमवस्थितम्।
अभिपेतुर्महावेगाः पतङ्गा इव पावकम्॥ २२॥

अशोकवाटिका के तोरण द्वार पर, जिसके समीप हनुमान्‌जी बैठे थे, पहुँचकर वे सब हनुमान्‌जी पर इस प्रकार झपटे जैसे पतङ्ग दीपक की लौ के ऊपर झपटते हैं।

मुद्गरैः पट्टिशैः शूलैः प्रासतोमरशक्तिभिः।
परिवार्य हनूमन्तं सहसा तस्थुरग्रतः॥ २३॥

वे राक्षस मुद्‌गर, पट्टिश, शूल, फरसा और तोमर आदि शस्त्रों को हाथ में ले और हनुमान्‌जी को चारों ओर से घेरकर उनके समक्ष खड़े हो गये।

हनुमानपि तेजस्वी श्रीमान्पर्वतसन्निभः।
क्षितावाविध्य पादौ द्वौ ननाद च महाध्वनिम्॥ २४॥

विशालकाय, तेजस्वी, श्रीमान् हनुमान्‌जी भी अपने दोनों पैरों को पृथिवी पर पटककर गर्जकर कहने लगे—

जयत्यतिबलो रामो लक्ष्मणश्च महाबलः।
राजा जयति सुग्रीवो राघवेणाभिपालितः॥ २५॥

महाबली पुरुषोत्तम श्रीराम की जय हो। महाबली लक्ष्मण की जय हो। श्रीराम द्वारा रक्षित सम्राट् की

१. यहाँ रावण की दो आँखों का ही वर्णन है।



जय हो।

दासोऽहं कोसलेन्द्रस्य रामस्याक्लिष्टकर्मणः।
हनुमाञ्शत्रुसैन्यानां निहन्ता मारुतात्मजः॥ २६॥

जिनके लिए कोई भी कार्य कठिन नहीं है मैं उन कोसलाधीश श्रीराम का दास हूँ। मेरा नाम हनुमान् है। मैं पवन का पुत्र हूँ और युद्ध में शत्रु की सेना को नष्ट करनेवाला हूँ।

स तैः परिवृतः शूरैः सर्वतः स महाबलः।
आससादायसं भीमं परिघं तोरणाश्रितम्॥ २७॥

(इतना कहने के पश्चात्) महाबली हनुमान् ने जो चारों ओर से उन शूरवीर राक्षसों से घिर गये थे, तोरण द्वार के समीप रखे हुए लोहे के परिघ नामक अस्त्र को उठाया।

स तं परिघमादाय जघान च निशाचरान्।
स पन्नगमिवादाय स्फुरन्तं विनतासुतः॥ २८॥

हनुमान् ने उस परिघ नामक अस्त्र को लेकर उन सभी राक्षसों को इस प्रकार मार डाला जिस प्रकार फड़फड़ाता हुआ गरुड़ नामक पक्षी सर्पों को मार डालता है।

स हत्वा राक्षसान्वीरान्किङ्करान्मारुतात्मजः।
युद्धाकाङ्क्षी पुनर्वीरस्तोरणं समुपाश्रितः॥ २९॥

पवनपुत्र हनुमान्‌जी उस वीर किङ्कर नामक सैनिक टुकड़ी का संहार कर युद्ध की आकांक्षा रखते हुए पुनः उसी तोरण द्वार के समीप जा बैठे।

ततस्तामाद्भयान्मुक्ताः कतिचित्तत्र राक्षसाः।
निहतान्किङ्करान्सर्वान्रावणाय न्यवेदयन्॥ ३०॥

उस भीषण संग्राम में जो थोड़े-से राक्षस मारे जाने से बच गये थे उन्होंने रावण के पास जाकर कहा कि किङ्कर नामक सैन्य टुकड़ी को उस वानर ने मार डाला।

➤ सप्तविंशः सर्गः ➤ (२७)

राक्षसी यज्ञशाला का विध्वंस—

ततः स किङ्करान्हत्वा हनुमान्ध्यानमास्थितः।
वनं भग्नं मया चैत्यप्रासादो न विनाशितः॥ १॥

उन किंकर नामक राक्षसों का संहार कर हनुमान्‌जी सोचने लगे कि मैंने अशोकवाटिका तो नष्ट कर डाली, परन्तु इन राक्षसों का चैत्यप्रासाद (राक्षसी यज्ञशाला—जहाँ मद्य-मांस का भी प्रयोग होता है) को तो नष्ट किया ही नहीं।

तस्मात्प्रासादमप्येवमिमं विध्वंसयाम्यहम्।
इति संचिन्त्य मनसा हनुमान्दर्शयन्बलम्॥ २॥
चैत्यप्रासादमाप्लुत्य मेरुशृङ्गमिवोन्नतम्।
आरुरोह हरिश्रेष्ठो हनुमान्मारुतात्मजः॥ ३॥

अतः इस यज्ञशाला को मैं लगे हाथ उजाड़ डालूँ। मन में ऐसा सोचकर और अपना बल प्रकट करते हुए कपिश्रेष्ठ पवनपुत्र महावीर हनुमान् मेरु पर्वत के समान उन्नत शिखरवाले उस चैत्य-प्रासाद पर कूदकर चढ़ गये।

आरुह्य गिरिसङ्काशं प्रासादं हरियूथपः।
बभौ स सुमहातेजाः प्रतिसूर्य इवोदितः॥ ४॥

महातेजस्वी हनुमान् उस पर्वत के समान ऊँचे प्रासाद पर चढ़कर नवोदित सूर्य के समान सुशोभित होने लगे।

संप्रधृष्य तु दुर्धर्षं चैत्यप्रासादमुत्तमम्।
धृष्टस्फोटयामास लङ्कां शब्देन पूरयन्॥ ५॥

उस दुर्धर्ष और श्रेष्ठ यज्ञशाला को नष्टकर विजयगर्व से प्रज्ज्वलित हनुमान् ने निर्भय होकर ऐसी गर्जना की कि उस गर्जना से सारी लङ्का व्याप्त हो गई।

अस्त्रविज्जयतां रामो लक्ष्मणश्च महाबलः।
राजा जयति सुग्रीवो राघवेणाभिपालितः॥ ६॥

गर्जना करते हुए उन्होंने कहा—अस्त्रवेत्ता श्रीराम की जय हो। महाबली लक्ष्मणजी की जय हो। श्रीराम द्वारा रक्षित वानरराज सुग्रीव की जय हो।



दासोऽहं कोसलेन्द्रस्य रामस्याक्लिष्टकर्मणः।
हनुमाञ्छत्रुसैन्यानां निहन्ता मारुतात्मजः॥ ७॥

मैं पुण्यकर्मा कोसलाधीश श्रीराम का दास हूँ। मैं पवन का पुत्र, और शत्रुसैन्य का नाशक हूँ। मेरा नाम हनुमान् है।

अर्दयित्वा पुरीं लङ्कामभिवाद्य च मैथिलीम्।
समृद्धार्थो गमिष्यामि मिषतां सर्वरक्षसाम्॥ ८॥

मैं सब राक्षसों के देखते-देखते लङ्कापुरी को ध्वस्त कर, सीताजी को प्रणाम कर और अपना उद्देश्य पूर्णकर चला जाऊँगा।

तेन शब्देन महता चैत्यपालाः शतं ययुः।
गृहीत्वा विविधानस्त्रान्प्रासान्खड्गान्परश्वधान्॥
विसृजन्तो महाकाया मारुतिं पर्यवारयन्॥ ९॥

उस सिंहनाद को सुनकर उस चैत्य-प्रासाद के बहुत-से रक्षक नाना प्रकार के अस्त्र—प्रास, खड्ग और फरसा आदि लेकर दौड़ पड़े और महाकाय हनुमान्‌जी को चारों ओर से घेरकर उन पर प्रहार करने लगे।

प्रासादस्य महान्तस्य स्तम्भं हेमपरिष्कृतम्।
उत्पाटयित्वा वेगेन हनुमान् पवनात्मजः॥ १०॥

तब पवनपुत्र हनुमान्‌जी ने भी उस विशाल-प्रासाद का एक सुवर्ण-निर्मित स्तम्भ=खम्भा उखाड़ लिया।

ततस्तं भ्रामयामास शतधारं महाबलः।
तत्र चाग्निः समभवत्प्रासादश्चाप्यदह्यत॥ ११॥

वह खम्भा सौ धारी का था। महाबली हनुमान् उस खम्भे को घुमाने लगे। उसके घुमाने से अग्नि की चिंगारियाँ प्रकट हो गईं जिससे वह भवन जल कर राख हो गया।

◀ अष्टाविंशः सर्गः ▶ (२८)

जम्बुमाली का वध—

सन्दिष्टो राक्षसेन्द्रेण प्रहस्तस्य सुतो बली।
जम्बुमाली महादंष्ट्रो निर्जगाम धनुर्धरः॥ १॥

इधर तो यज्ञशाला का विध्वंस हुआ उधर राक्षसराज रावण की आज्ञा से महाबली, विकराल दाँतोवाला प्रहस्त का पुत्र जम्बुमाली हाथ में धनुष लेकर नगर से बाहर निकला।

रक्तमाल्याम्बरधरः स्रग्वी रुचिरकुण्डलः।
महान्विवृत्तनयनश्चण्डः समरदुर्जयः॥ २॥

उसने लाल माला धारण की हुई थी और लाल वस्त्र पहने हुए थे। उसके कानों में कमनीय=सुन्दर कुण्डल थे। विशाल आँखें फाड़े हुए और अत्यन्त क्रोध में आया हुआ वह जम्बुमाली युद्ध में दुर्जेय माना जाता था।

महाजवो महोत्साहो महासत्त्वोरुविक्रमः।
आजगामातिवेगेन सायुधः स महारथः॥ ३॥

महावेगवान्, अत्यन्त उत्साही, महाबली एवं प्रचण्ड पराक्रमी वह जम्बुमाली एक बड़े रथ में बैठ और आयुधों से लैस होकर बड़े वेग के साथ वहाँ पहुँचा जहाँ हनुमान्‌जी थे।

रथेन खरयुक्तेन तमागतमुदीक्ष्य सः।
हनुमान् वेगसम्पन्नो जहर्ष च ननाद च॥ ४॥

खच्चरों से युक्त रथ पर बैठकर आये हुए जम्बुमाली को देखकर वेगवान् महावीर हनुमान्‌जी हर्षित होकर सिंहनाद करने लगे।

तं तोरणविटङ्कस्थं हनुमन्तं महाकपिम्।
जम्बुमाली महाबाहुर्विव्याध निशितैः शरैः॥ ५॥

महाकपि हनुमान् को तोरण द्वार के खम्भे पर बैठा देख महाबाहु जम्बुमाली ने अपने तीखे बाणों से उन्हें बेध डाला।

चुकोप बाणाभिहतो राक्षसस्य महाकपिः।
तमेव परिघं गृह्य भ्रामयामास मारुतिः॥ ६॥



बाणों से घायल होने पर हनुमान्जी उस राक्षस पर अत्यन्त कुपित हुए और उन्होंने उसी परिघ नामक अस्त्र को उठाकर बड़े वेग के साथ घुमाया।

अतिवेगोऽतिवेगेन भ्रामयित्वा बलोत्कटः।
परिघं पातयामास जम्बुमालेर्महोरसि॥ ७॥

अत्यन्त वेगवान् और उत्कट बलशाली हनुमान् ने उस परिघ को उठाकर जम्बुमाली की छाती में दे मारा।

तस्य चैव शिरो नास्ति न बाहू न च जानुनी।
न धनुर्न रथो नाश्वस्तत्रादृश्यन्त नेषवः[1]॥ ८॥

उस परिघ के भीषण प्रहार से जम्बुमाली का सिर, भुजा, जांघ, रथ, घोड़े और तीरों को पता ही नहीं चला कि वे सब-के-सब कहाँ गये।

स हतस्तरसा तेन जम्बुमाली महाबलः।
पपात निहतो भूमौ चूर्णिताङ्गविभूषणः॥ ९॥

महाबली जम्बुमाली हनुमान्जी के परिघ के आघात से निष्प्राण होकर पृथिवी पर गिर पड़ा। उसका शरीर तथा आभूषण चूर-चूर हो गये।

जम्बुमालिं च निहतं किङ्करांश्च महाबलान्।
चुक्रोध रावणः श्रुत्वा कोपसंरक्तलोचनः॥ १०॥

जम्बुमाली और अपने महाबली किंकरों की मृत्यु का समाचार सुनकर रावण अत्यन्त क्रुद्ध हुआ और क्रोध के मारे उसके नेत्र लाल हो गये।

◀ एकोनत्रिंशः सर्गः ▶ (२९)

मन्त्रि-पुत्रों का वध—

ततस्ते राक्षसेन्द्रेण चोदिता मन्त्रिणः सुताः।
निर्ययुर्भवनात्तस्मात्सप्त सप्तार्चिर्वर्चसः॥ १॥

किंकरों और जम्बुमाली के मारे जाने के पश्चात् राक्षसराज रावण के आदेश से सूर्य के समान तेजस्वी सात मन्त्रि-पुत्र राजसभा से निकल पड़े।

महाबलपरीवारा धनुष्मन्तो महाबलाः।
कृतास्त्रास्त्रविदां श्रेष्ठाः परस्परजयैषिणः॥ २॥

वे सब-के-सब विशाल सेना से घिरे हुए थे, वे धनुर्धारी और महाबलवान् थे। उन्होंने अस्त्रविद्या का अभ्यास ही नहीं किया था, अपितु अस्त्रधारियों में श्रेष्ठ थे और परस्पर विजय की अभिलाषा करने वाले थे।

ते परस्परसंघर्षात्तप्तकाञ्चनभूषणाः।
अभिपेतुर्हनुमन्तं तोरणस्थमवस्थितम्॥ ३॥

समुज्ज्वल स्वर्णाभूषणों से विभूषित और 'मैं आगे पहुँचूँ', 'मैं पहले पहुँचूँ'—ऐसी स्पर्धा करते हुए वे मन्त्रि-कुमार तोरण द्वार के समीप बैठे हुए हनुमान्जी के पास जा पहुँचे।

सृजन्तो बाणवृष्टिं ते रथगर्जितनिःस्वनाः।
वृष्टिमन्त इवाम्भोदा विचेरुर्नैर्ऋताम्बुदाः॥ ४॥

वे मन्त्रि-कुमार बाणों की वर्षा करते हुए और रथ की गड़गड़ाहट सुनाते हुए ऐसे प्रतीत होते थे जैसे वर्षाकाल के मेघ विचरण कर रहे हों।

स कृत्वा निनदं घोरं त्रासयंस्तां महाचमूम्।
चकार हनुमान्वेगं तेषु रक्षःसु वीर्यवान्॥ ५॥

उधर महापराक्रमी हनुमान्जी भी भीषण सिंहनाद द्वारा अत्यन्त वेग से उन राक्षसों पर टूट पड़े।

तलेनाभ्यहनत्कांश्चित्पद्भ्यां कांश्चित्परन्तपः।
मुष्टिनाभ्यहनत्कांश्चिन्नखैः कांश्चिद् व्यदारयत्॥ ६॥

शत्रुहन्ता हनुमान् ने राक्षसी सेना में किन्ही को थप्पड़ों से, किन्हीं को लातों से, किन्हीं को घूँसों से और किन्हीं को तीक्ष्ण नखों से चीर-फाड़कर मार डाला।

१. यह श्लोक अतिशयोक्ति-अलंकार का सुन्दर उदाहरण है।

प्रममाथोरसा कांश्चिदूरुभ्यामपरान्कपिः।
केचित्तस्य निनादेन तत्रैव पतिता भुवि॥ ७॥

हनुमान्‌जी ने किन्हीं को छाती से रगड़ दिया और किन्हीं को जाँघों से मसल डाला। कितने ही राक्षस हनुमान्‌जी के भयंकर सिंहनाद को सुनकर ही पृथिवी पर गिरकर मर गये।

ततस्तेष्ववसन्नेषु भूमौ निपतितेषु च।
तत्सैन्यमगमत्सर्वं दिशो दश भयार्दितम्॥ ८॥

जब वे सातों मन्त्रि-पुत्र मरकर धराशायी हो गये तब उनकी बची-खुची सेना भयभीत होकर चारों दिशाओं में भाग गई।

स तान् प्रवृद्धान्विनिहत्य राक्षसान्
महाबलश्चण्डपराक्रमः कपिः।
युयुत्सुरन्यैः पुनरेव राक्षसैः
तदेव वीरोऽभिजगाम तोरणम्॥ ९॥

महाबली एवं प्रचण्ड पराक्रमी वीर हनुमान् उन मदोन्मत्त राक्षसों को मारकर तथा अन्य राक्षसों से युद्ध करने की इच्छा से पुनः उसी तोरण द्वार के समीप आ गये।

❮ त्रिंशः सर्गः ❯ (३०)

पाँच सेनापतियों का वध—

हतान्मन्त्रिसुतान्बुद्ध्वा वानरेण महात्मना।
रावणः संवृताकारश्चकार मतिमुत्तमाम्॥ १॥

महात्मा हनुमान् द्वारा मन्त्रिपुत्रों की मृत्यु का समाचार सुनकर रावण ने अपने भय एवं उद्वेग को छिपाते हुए धीरतापूर्वक अपने कर्त्तव्य का निश्चय किया।

स विरूपाक्षयूपाक्षौ दुर्धरं चैव राक्षसम्।
प्रघसं भासकर्णं च पञ्चसेनाग्रनायकान्॥ २॥
संदिदेश दशग्रीवो वीरान्नयविशारदान्।
हनुमद्ग्रहणे व्यग्रान्वायुवेगसमान् युधि॥ ३॥

रावण ने विरूपाक्ष, यूपाक्ष, दुर्धर, प्रघस और भासकर्ण—इन पाँच सेनापतियों को, जो युद्ध में वायु के वेग के समान काम करनेवाले, रणनीति-विशारद और उद्भट बलवान् थे हनुमान् को पकड़ने की आज्ञा दी।

ते स्वामिवचनं सर्वे प्रतिगृह्य महौजसः।
समुत्पेतुर्महावेगा हुताशसमतेजसः॥ ४॥

रावण की आज्ञा पा वे सब बलवान् और अग्नि के समान तेजस्वी राक्षस बड़ी शीघ्रता से चल पड़े।

तं समीक्ष्यैव ते सर्वे तोरणस्थं महाबलम्।
तैस्तैः प्रहरणैर्भीमैरभिपेतुस्ततस्ततः॥ ५॥

तोरण द्वार के समीप बैठे हुए महाबली हनुमान् को देखते ही, वे सेनापति उन्हें चारों ओर से घेरकर उन पर भयंकर अस्त्र-शस्त्रों का प्रहार करने लगे।

अर्द्यमानस्ततस्तेन दुर्धरेणानिलात्मजः।
निपपात महावेगो दुर्धरस्य रथे हरिः॥ ६॥

जब पवनपुत्र हनुमान्‌जी सेनापति दुर्धर की बाणवृष्टि से पीड़ित होने लगे तब वे सहसा बहुत दूर से उछलकर दुर्धर के रथ पर कूद पड़े।

ततः स मथिताष्टाश्वं रथं भग्नाक्षकूबरम्।
विहाय न्यपतद् भूमौ दुर्धरस्त्यक्तजीवितः॥ ७॥

हनुमान् के रथ पर कूदते ही आठों घोड़ों सहित वह रथ जुआ और धुरी सहित चकनाचूर हो गया। वह दुर्धर राक्षस भी रथ और प्राणों से विहीन होकर पृथिवी पर गिर पड़ा।

तं विरूपाक्षयूपाक्षौ दृष्ट्वा निपतितं भुवि।
जातरोषौ मुद्गराभ्यां वक्षस्याभिहतः कपिः॥ ८॥

दुर्धर को धराशायी हुआ देखकर विरूपाक्ष और यूपाक्ष दोनों ने क्रुद्ध होकर मुद्गरों से हनुमान् की छाती पर प्रहार किया।



तयोर्वेगवतोर्वेगं विनिहत्य महाबलः।
स सालवृक्षमुत्पाट्य जघान पवनात्मजः॥ ९॥

महाबली हनुमान् ने उनके वेगयुक्त प्रहार को रोककर और एक साल वृक्ष को उखाड़कर उसके आघात से दोनों राक्षसों को मार गिराया।

ततस्तांस्त्रीन्हताञ्ज्ञात्वा वानरेण तरस्विना।
अभिपेदे महावेगः प्रहस्य प्रघसो हरिम्॥ १०॥

महाबली हनुमान् द्वारा उन तीनों सेनापतियों को मरा हुआ जान महावेगवान् प्रघस नामक राक्षस सेनापति अट्टहास करता हुआ हनुमान्‌जी के सम्मुख आया।

भासकर्णश्च संक्रुद्धः शूलमादाय वीर्यवान्।
एकतः कपिशार्दूलं यशस्विनमवस्थितम्॥ ११॥

महाशक्तिशाली भासकर्ण भी अत्यन्त क्रुद्ध हो और हाथ में शूल लेकर यशस्वी हनुमान्‌जी के एक ओर जा खड़ा हुआ।

पट्टिशेन शिताग्रेण प्रघसः प्रत्ययोधयत्।
भासकर्णश्च शूलेन राक्षसः कपिसत्तमम्॥ १२॥

तब प्रघस तीक्ष्ण नोकवाले पट्टिश से और भासकर्ण त्रिशूल से कपिश्रेष्ठ हनुमान् के साथ युद्ध करने लगे।

स ताभ्यां विक्षतैर्गात्रैरसृग्दिग्धतनूरुहः।
अभवद्वानरः क्रुद्धो बालसूर्यसमप्रभः॥ १३॥

उन दोनों के संयुक्त प्रहार से आहत होने पर उनके शरीर से निकली हुई रुधिर धारा से हनुमान् के शरीर के लोम रक्तवर्ण हो गये। उस समय प्रातःकालीन सूर्य के समान कान्तिवाले हनुमान्‌जी अत्यन्त क्रुद्ध हुए।

समुत्पाट्य गिरेः शृङ्गं सव्यालमृगपादपम्।
जघान हनुमान् वीरो राक्षसौ कपिकुञ्जरः॥ १४॥

तब मृग=पशु, सर्प, और वृक्षों से आक्रान्त पर्वत की एक चोटी=शिला को उखाड़कर कपिश्रेष्ठ वीर हनुमान् ने उन दोनों राक्षसों को मार डाला।

ततस्तेष्ववसन्नेषु सेनापतिषु पञ्चसु।
बलं तदवशेषं च नाशयामास वानरः॥ १५॥

उन पाँचों सेनापतियों को मारकर हनुमान्‌जी अवशिष्ट राक्षस-सेना का संहार करने लगे।

➤ एकत्रिंशः सर्गः ➤ (३१)

अक्षकुमार का वध—

सेनापतीन्पञ्च स तु प्रमापितान्
हनूमता सानुचरान्सवाहनान्।
समीक्ष्य राजा समरोद्धतोन्मुखं
कुमारमक्षं प्रसमैक्षताग्रतः॥ १॥

हनुमान् द्वारा अपनी सेना और वाहन आदि साधनों सहित अपने पाँच सेनापतियों की मृत्यु का समाचार सुनकर राक्षसराज रावण ने युद्ध में जाने के लिए समुद्यत और अपने सामने बैठे हुए अक्षकुमार की ओर दृष्टिपात किया।

स तस्य दृष्ट्यर्पणसंप्रचोदितः
समुत्पपाताथ हविषेव पावकः।
बलैः समेतैः स हि तोरणस्थितं
समर्थमासीनमुपागमत्कपिम्॥ २॥

रावण के दृष्टि-प्रक्षेप मात्र से प्रेरित होकर अक्षकुमार ऐसे उठ खड़ा हुआ जैसे अग्नि में हवि डालने से अग्नि-शिखा ऊपर उठती है। अपनी सेना को साथ लेकर अक्षकुमार तोरणद्वार के समीप बैठे अति सामर्थ्यवान् हनुमान्‌जी के निकट आ पहुँचा।

स जातमन्युः प्रसमीक्ष्य विक्रमं
स्थिरं स्थितः संयति दुर्निवारणम्।
समाहितात्मा हनुमन्तमाहवे
प्रचोदयामास शरैस्त्रिभिः शितैः॥ ३॥

हनुमान् द्वारा राक्षसों के विध्वंस आदि के सम्बन्ध में सोचकर तथा संग्राम के लिए उद्यत और संग्राम में



दुर्निवार्य हनुमान् पर अक्षकुमार ने क्रुद्ध और एकाग्र चित्त हो तीन पैने बाण चलाकर उसे युद्ध के लिए ललकारा।

ततः स बाणासनचित्रकार्मुकः
शरप्रवर्षो युधि राक्षसाम्बुदः।
शरान्मुमोचाशु हरीश्वराचले
बलाहको वृष्टिमिवाचलोत्तमे॥ ४॥

तत्पश्चात् जिस प्रकार मेघ पर्वतों पर जल की वृष्टि किया करते हैं उसी प्रकार उस युद्ध में अक्षकुमार रूपी बादल, हनुमान् रूपी पर्वत पर अपने अद्भुत धनुष से बाणरूपी जल की वृष्टि करने लगा।

ततः कपिस्तं रणचण्डविक्रमं
विवृद्धतेजोबलवीर्यसंयुतम्।
कुमारमक्षं प्रसमीक्ष्य संयुगे
ननाद हर्षाद् घनतुल्यनिःस्वनः॥ ५॥

संग्राम में प्रचण्ड पराक्रमी, तेज से प्रदीप्त, बल और पराक्रम से युक्त अक्षकुमार को देखकर हनुमान् प्रसन्न हो मेघ के समान गर्जे।

ततः शरैर्भिन्नभुजान्तरः कपिः
कुमारवीर्येण महात्मना नदन्।
महाभुजः कर्मविशेषतत्त्ववित्
विचिन्तयामास रणे पराक्रमम्॥ ६॥

इतने में महात्मा वीर अक्षकुमार ने हनुमान् की छाती में अनेक बाण मारकर उनके वक्षःस्थल को क्षत-विक्षत कर दिया। तब कार्य-पटु महाबाहु हनुमान् अक्षकुमार के युद्ध सम्बन्धी पराक्रम के विषय में विचार करने लगे।

न खल्वयं नाभिभवेदुपेक्षितः
पराक्रमो ह्यस्य रणे विवर्धते।
प्रमापणं त्वेव ममास्य रोचते
न वर्धमानोऽग्निरुपेक्षितुं क्षमः॥ ७॥

युद्ध में इसका जैसा उत्तरोत्तर पराक्रम बढ़ता जा रहा है यदि अब इसकी उपेक्षा की गई तो यह निश्चय ही मुझे पराजित कर देगा, अतः अब इसका वध करना ही श्रेयस्कर है, क्योंकि बढ़ती हुई अग्नि की उपेक्षा करना उचित नहीं।

स मारुतिर्मारुतवेगवांस्तदा
करेण जग्राह च पादयोर्दृढम्।
स तं समाविध्य सहस्रशः कपिः
मुमोच वेगात् युधि वानरोत्तमः॥ ८॥

तब पवनतुल्य पराक्रमी हनुमान्‌जी ने युद्ध करते हुए अक्षकुमार के दोनों पैरों को दृढ़ता से पकड़कर और उसे अनेक बार घुमाकर ग्राम-भूमि में दे पटका।

स भग्नबाहूरुकटिशिरोधरः
क्षरन्नसृङ्निर्मथितास्थिलोचनः।
प्रभिन्नसन्धिः प्रविकीर्णबन्धनो
हतः क्षितौ वायुसुतेन राक्षसः॥ ९॥

जिसकी भुजाएँ, जाँघें, कमर, सिर और अधर=होंठ चूर-चूर हो गये हैं, जिसकी हड्डियाँ टूट चुकी हैं और आँखें निकल पड़ी हैं, जिसके जोड़ों के सारे बन्धन शिथिल हो चुके हैं, जिसके सम्पूर्ण शरीर से रक्त प्रवाहित हो रहा है ऐसा अक्षकुमार हनुमान् के द्वारा मारा जाकर भूमि पर गिर पड़ा।

➤ द्वात्रिंशः सर्गः ➤ (३२)

इन्द्रजित् को आदेश—

ततस्तु रक्षोधिपतिर्महात्मा
हनूमताक्षे निहते कुमारे।
मनः समाधाय तदेन्द्रकल्पं
समादिदेशेन्द्रजितं स रोषात्॥ १॥

हनुमान् के द्वारा अक्षकुमार के मारे जाने पर राक्षसराज रावण ने धैर्य धारणकर तथा क्रुद्ध हो इन्द्र



के समान पराक्रमी इन्द्रजित्=मेघनाद को युद्ध में जाने का आदेश दिया।

ततः पितुस्तद्वचनं निशम्य
प्रदक्षिणं दक्षसुतप्रभावः।
चकार भर्तारमतित्वरेण
रणाय वीरः प्रतिपन्नबुद्धिः॥ २॥

पिता के आदेश को सुनकर देवों के तुल्य प्रभाववाला वीर मेघनाद रावण की परिक्रमा कर और युद्ध करने का निश्चय कर अति शीघ्रतापूर्वक वहाँ से चल दिया।

ततस्तैः स्वगणैरिष्टैरिन्द्रजित्प्रतिपूजितः।
युद्धोद्धतः कृतोत्साहः संग्रामं प्रत्यपद्यत॥ ३॥

इन्द्रजित् अपने इष्ट-मित्रों द्वारा सम्मनित और युद्ध के लिए उत्साहित होकर, युद्धक्षेत्र में जा पहुँचा।

आयान्तं सरथं दृष्ट्वा तूर्णमिन्द्रजितं कपिः।
विननाद महानादं व्यवर्धत च वेगवान्॥ ४॥

रथ में बैठकर बड़ी शीघ्रता से अपनी ओर आते हुए इन्द्रजित् को देखकर वेगवान् हनुमान्जी भी भयंकर गर्जना करते हुए आगे बढ़े।

तावुभौ वेगसम्पन्नौ रणकर्मविशारदौ।
सर्वभूतमनोग्राहि चक्रतुर्युद्धमुत्तमम्॥ ५॥

हनुमान् और इन्द्रजित् दोनों ही वेग-सम्पन्न और रणपण्डित थे, अतः वे दोनों सब प्राणियों के मन को हरनेवाला युद्ध करने लगे।

हनुमतो वेद न राक्षसोऽन्तरं
न मारुतिस्तस्य महात्मनोऽन्तरम्।
परस्परं निर्विषहौ बभूवतुः
समेत्य तौ देवसमानविक्रमौ॥ ६॥

युद्ध करते हुए न तो हनुमान्जी को मेघनाद में कहीं कोई छिद्र (कमी, त्रुटि) दिखाई दी और न मेघनाद को हनुमान् में कहीं कोई कमजोरी दिखाई दी। वे दोनों ही देवताओं के समान पराक्रमशाली थे, अतः वे दोनों एक-दूसरे के पराक्रम का धैर्यपूर्वक सामना करने लगे।

ततस्तु लक्ष्ये स विहन्यमाने
शरेष्वमोघेषु च संपतत्सु।
जगाम चिन्तां महतीं महात्मा
समाधिसंयोगसमाहितात्मा॥ ७॥

जब मेघनाद अनेक अमोघ (कभी व्यर्थ न जानेवाले) बाण चलाकर भी हनुमान् को विद्ध न कर सका तब समाधि-योग का अभ्यास करनेवाले साधक की भाँति एकाग्रचित्त होकर मेघनाद विचारने लगा—

अवध्योऽयमिति ज्ञात्वा तमस्त्रेणास्त्रतत्त्ववित्।
निजग्राह महाबाहुर्मारुतात्मजमिन्द्रजित्॥ ८॥

यह अस्त्रों द्वारा अवध्य है, ऐसा जानकर अस्त्रों के मर्म को जाननेवाले मेघनाद ने पवनपुत्र महाबाहु हनुमान् को ब्रह्मास्त्र से बाँधकर जीवित ही पकड़ लिया।

तेन बद्धस्ततोऽस्त्रेण राक्षसेन स वानरः।
अभवन्निर्विचेष्टश्च पपात च महीतले॥ ९॥

तब राक्षस इन्द्रजित् द्वारा ब्रह्मास्त्र से बाँधे जाने पर हनुमान्जी निश्चेष्ट होकर भूमि पर गिर पड़े।

ततस्तं राक्षसा दृष्ट्वा निर्विचेष्टमरिन्दमम्।
बबन्धुः शणवल्कैश्च द्रुमचीरैश्च संहतैः॥ १०॥

शत्रुहन्ता हनुमान्जी को निश्चेष्ट पड़ा हुआ देखकर राक्षस लोग उनको सन की, वल्कल और वृक्षों की छाल से बनी हुई रस्सियों से कसकर बाँधने लगे।

तं मत्तमिव मातङ्गं बद्धं कपिवरोत्तमम्।
राक्षसा राक्षसेन्द्राय रावणाय न्यवेदयन्॥ ११॥

राक्षस लोगों ने मत्त हाथी की भाँति बँधे हुए हनुमान्जी को राक्षसराज रावण के समक्ष उपस्थित कर दिया।

महति स्फाटिके चित्रे रत्नसंयोगसंस्कृते।
उत्तमास्तरणास्तीर्णे सूपविष्टं वरासने॥ १२॥

रावण रत्न-जटित स्फाटिक पत्थर के एक विशाल और उत्तम सिंहासन पर जिस पर बहुमूल्य उत्तम आसन बिछा हुआ था, सुशोभित हो रहा था।



अलङ्कृताभिरत्यर्थं प्रमदाभिः समन्ततः।
वालव्यजनहस्ताभिरारात्समुपसेवितम्॥ १३॥

नाना प्रकार के आभूषणों से भूषित स्त्रियाँ हाथों में चमर और व्यजन लिये हुए उसके चारों ओर खड़ी हुई उसकी सेवा कर रही थीं।

दुर्धरेण प्रहस्तेन महापार्श्वेन रक्षसा।
मन्त्रिभिर्मन्त्रतत्त्वज्ञैर्निकुम्भेन च मन्त्रिणा॥ १४॥

दुर्धर, प्रहस्त, महापार्श्व और निकुम्भ नामक चार परामर्श देने में निपुण, तत्त्ववेत्ता मन्त्री उसके समीप थे।

उपोपविष्टं रक्षोभिश्चतुर्भिर्बलदर्पितैः।
कृत्स्नः परिवृतो लोकश्चतुर्भिरिव सागरैः॥ १५॥

उन चार तत्त्वज्ञ एवं बलदर्पित मन्त्रियों से घिरा हुआ रावण वहाँ बैठा हुआ ऐसा सुशोभित हो रहा था जैसे चार समुद्रों से घिरा हुआ सम्पूर्ण भूमण्डल सुशोभित होता है।

भ्राजमानं ततो दृष्ट्वा हनुमान्राक्षसेश्वरम्।
मनसा चिन्तयामास तेजसा तस्य मोहितः॥ १६॥

इस प्रकार अत्यन्त प्रकाशमान एवं सुशोभित राक्षसराज रावण को देखकर हनुमान्‌जी उसके प्रताप और प्रभाव से मुग्ध होकर मन-ही-मन सोचने लगे—

अहो रूपमहो धैर्यमहो सत्त्वमहो द्युतिः।
अहो राक्षसराजस्य सर्वलक्षणयुक्तता॥ १७॥

अहो! इस राक्षसराज रावण का रूप कैसा सुन्दर एवं मनोहारी है। इसमें कितना धैर्य है। कैसा इसमें पराक्रम है और इसमें कितनी कमनीय कान्ति है। अहो! यह राक्षसराज सभी शुभ लक्षणों से परिपूर्ण है।

यद्यधर्मो न बलवान्स्यादयं राक्षसेश्वरः।
स्यादयं सुरलोकस्य सशक्रस्यापि रक्षिता॥ १८॥

यदि इस राक्षसराज रावण में अधर्म का आधिक्य न होता (अर्थात् यह पापाचारी न होता) तो यह राक्षसराज इन्द्र सहित देवलोक पर भी शासन करता।

अस्य क्रूरैर्नृशंसैश्च कर्मभिर्लोककुत्सितैः।
सर्वे बिभ्यति खल्वस्माल्लोकाः सामरदानवाः॥ १९॥

परन्तु इसके क्रूर, निर्दय और अन्यलोक-निन्दित कर्मों से निश्चय ही सम्पूर्ण देव और दानव-मण्डल भयभीत रहता है।

अयं ह्युत्सहते क्रुद्धः कर्तुमेकार्णवं जगत्।
इति चिन्तां बहुविधामकरोन्मतिमान्कपिः।
दृष्ट्वा राक्षसराजस्य प्रभावममितौजसः॥ २०॥

क्रुद्ध होने पर यह राक्षसराज रावण सारे संसार को नष्ट कर सकता है। महामति हनुमान्‌जी अत्यन्त पराक्रमी रावण के तेज एवं प्रभाव को देख इस प्रकार विविध कल्पनाएँ करने लगे।

➤ त्रयस्त्रिंशः सर्गः ➤ (३३)

प्रहस्त द्वारा हनुमान् से प्रश्न और हनुमान् का रावण को उपदेश—

तमुद्वीक्ष्य महाबाहुः पिङ्गाक्षं पुरतः स्थितम्।
रोषेण महताविष्टो रावणो लोकरावणः॥ १॥

लोकों को रुलानेवाला, विशालबाहु और अत्यन्त क्रुद्ध वह रावण पीले नेत्रोंवाले हनुमान् को अपने समक्ष खड़ा हुआ देखकर—

स राजा रोषताम्राक्षः प्रहस्तं मन्त्रिसत्तमम्।
कालयुक्तमुवाचेदं वचो विपुलमर्थवत्॥ २॥

क्रोध से लाल आँखोंवाला वह राक्षसराज रावण अपने प्रधानमन्त्री प्रहस्त से समय के अनुकूल और विपुल अर्थयुक्त यह गम्भीर वचन बोला—

दुरात्मा पृच्छ्यतामेष कुतः किं वास्य कारणम्।
वनभङ्गे च कोऽस्यार्थो राक्षसानां च तर्जने॥ ३॥

इस दुष्ट से पूछो कि यह कहाँ से आया है? क्यों



आया है ? अशोकवाटिका को नष्ट-भ्रष्ट करने और राक्षसों के डराने-धमकाने में इसका क्या प्रयोजन है ?

मत्पुरीमप्रधृष्यां वाऽऽगमने किं प्रयोजनम्।
आयोधने वा किं कार्यं पृच्छ्यतामेष दुर्मतिः ॥ ४॥

इस दुर्बद्धि से यह भी पूछो कि दुर्गमनीय मेरी लङ्कापुरी में इसके आने का क्या प्रयोजन है तथा यहाँ आकर हमारे सेवकों के साथ युद्ध करने का क्या प्रयोजन है[१] ?

रावणस्य वचः श्रुत्वा प्रहस्तो वाक्यमब्रवीत्।
समाश्वसिहि भद्रं ते न भीः कार्या त्वया कपे॥ ५॥

रावण के वचनों को सुनकर प्रहस्त ने हनुमान्जी से कहा—हे कपे! तुम्हारा कल्याण हो। उद्विग्न मत होओ, धैर्य धारण करो—विश्वास रखो। डरो नहीं।

तत्त्वतः कथयस्वाद्य ततो वानर मोक्ष्यसे।
अनृतं वदतश्चापि दुर्लभं तव जीवितम्॥ ६॥

हे वानर! तुम सारा वृत्तान्त ठीक-ठीक बता दो तो तुम्हें अभी मुक्त कर दिया जायेगा और यदि झूठ बोलोगे तो तुम्हें जीवन से हाथ धोना पड़ेगा।

एवमुक्तो हरिवरस्तदा रक्षोगणेश्वरम्।
दूतोऽहमिति विज्ञेयो राघवस्यामितौजसः॥ ७॥

राक्षसराज रावण के मन्त्री प्रहस्त के इस प्रकार पूछने पर कपिश्रेष्ठ हनुमान् ने कहा—तुम मुझे अमित पराक्रमी श्रीराम का दूत समझो।

अहं सुग्रीवसंदेशादिह प्राप्तस्तवालयम्।
राक्षसेन्द्र हरीशस्त्वां भ्राता कुशलमब्रवीत्॥ ८॥

(प्रहस्त से इतना कहकर हनुमान् ने रावण से कहना आरम्भ किया) हे राक्षसराज! मैं सम्राट् सुग्रीव के संदेश से आपके पास आया हूँ। आपके बन्धु राजा सुग्रीव ने आपकी कुशल-क्षेम पूछी है।

अहं तु हनुमान्नाम मारुतस्यौरसः सुतः।
सीतायास्तु कृते तूर्णं शतयोजनमायतम्॥ ९॥
समुद्रं लङ्घयित्वैव तां दिदृक्षुरिहागतः।
भ्रमता च मया दृष्टा गृहे ते जनकात्मजा॥ १०॥

मैं पवनदेव का औरस पुत्र हूँ। मेरा नाम हनुमान् है। सीता की खोज में शीघ्रतापूर्वक सौ योजन लम्बे समुद्र को पारकर मैं उसके दर्शन के लिए यहाँ आया हूँ। इस नगरी में घूमते-फिरते मैंने तुम्हारे गृह में सीता को देखा है।

तद्भवान्दृष्टधर्मार्थस्तपः कृतपरिग्रहः।
परदारान्महाप्राज्ञ नोपरोद्धुं त्वमर्हसि॥ ११॥

हे महाप्राज्ञ! आप धर्म और अर्थ को भली प्रकार जानते हैं तथा तप के प्रभाव से आपने इस सारे ऐश्वर्य का सम्पादन किया है, अतः आप जैसे व्यक्ति के लिए पराई स्त्री को अपने घर में बन्द रखना उचित नहीं है।

न हि धर्मविरुद्धेषु बह्वपायेषु कर्मसु।
मूलघातिषु सज्जन्ते बुद्धिमन्तो भवद्विधाः॥ १२॥

आप जैसे बुद्धिमान को धर्मविरुद्ध, अनर्थकारी तथा जड़ से नाश करनेवाले कार्यों में प्रवृत्त नहीं होना चाहिए।

कश्च लक्ष्मणमुक्तानां रामकोपानुवर्तिनाम्।
शराणामग्रतः स्थातुं शक्तो देवासुरेष्वपि॥ १३॥

राम के क्रोध का अनुसरण करनेवाले लक्ष्मण

---

१. हिन्दी-साहित्य के सुप्रसिद्ध कवि आचार्य केशव ने अपनी 'रामचन्द्रिका' में रावण और हनुमान् का वार्तालाप इन शब्दों में चित्रित किया है—

रे कपि कौन तू ? अच्छ को
घातक दूत बली रघुनन्दन जू को।
को रघुनन्दन रे ? त्रिसिरा-
खरदूषन-दूषन भूषण भू को॥
सागर कैसे तर्‍यो ? जस गोपद,
काज कहा ? सिय चोरहि देखो।
कैसे बंधायो ? जु सुन्दरि तेरी
छुई दृग सोवत पातक लेखो॥

द्वारा छोड़े गये बाणों के समक्ष टिकने की शक्ति देव तथा असुर किसी में भी नहीं है।

न चापि त्रिषु लोकेषु राजन्विद्यते कश्चन।
राघवस्य व्यलीकं यः कृत्वा सुखमवाप्नुयात्॥ १४॥

हे राजन्! तीनों लोकों में ऐसा कोई भी पुरुष नहीं है जो श्रीराम के साथ विरोध करके सुखपूर्वक रह सके।

तत्त्रिकालहितं वाक्यं धर्म्यमर्थानुबन्धि च।
मन्यस्य नरदेवाय जानकी प्रतिदीयताम्॥ १५॥

हे रावण! मैंने जो कुछ कहा है वह तीनों कालों के लिए हितकारी तथा धर्म-अर्थ के अनुकूल है, अत: मेरी बात मानकर आप सीताजी को नरकेसरी श्रीराम को लौटा दें।

दृष्टा हीयं मया देवी लब्धं यदिह दुर्लभम्।
उत्तरं कर्म यच्छेषं निमित्तं तत्र राघवः॥ १६॥

देवी जानकी को जिसका दर्शन मेरे जैसे व्यक्ति के लिए बहुत दुर्लभ था मैंने यहाँ देख लिया है। इसके पश्चात् जो आगे का कर्त्तव्य है वह श्रीराम पर निर्भर है।

लक्षितेयं मया सीता तथा शोकपरायणा।
गृह्य यां नाभिजानासि पञ्चास्यामिव पन्नगीम्॥ १७॥

शोकपरायण सीता को मैंने तुम्हारे घर में देखा है। तुम यह मत समझना कि सीता तुम्हारे वश में हो गई है, अपितु पाँच फनवाली नागिन की भाँति तुम इसे अपना काल ही समझना।

नेयं जरयितुं शक्या सा सुरैरमरैरपि।
विषसंस्पृष्टमत्यर्थं भुक्तमन्नमिवौजसा॥ १८॥

जिस प्रकार विषयुक्त अन्न को तीव्र जठराग्नि के बल पर भी नहीं पचाया जा सकता उसी प्रकार यह सीता देव और दानव किसी के द्वारा भी छिपाई नहीं जा सकती।

यां सीतेत्यभिजानासि येयं तिष्ठति ते वशे।
कालरात्रीति तां विद्धि सर्वलङ्काविनाशिनीम्॥ १९॥

हे रावण! जिसे तुम सीता समझ रहे हो और जो इस समय तुम्हारे पञ्जे में फँसी हुई है उसे तुम सारी लङ्का का नाश करनेवाली कालरात्रि समझो।

सीतायास्तेजसा दग्धां रामकोपप्रपीडिताम्।
दह्यमानामिमां पश्य पुरीं साट्टप्रतोलिकाम्॥ २०॥

हे रावण! तुम सीता के तेज से दग्ध और श्रीराम के कोप से पीड़ित होकर अट्टालिकाओं सहित इस लङ्का को शीघ्र ही भस्म होते हुए देखोगे।

स्वानि मित्राणि मन्त्रींश्च ज्ञातीन्भ्रातॄन्सुतान्हितान्।
भोगान् दारान् लङ्कां च मा विनाशमुपानय॥ २१॥

हे रावण! अब भी समय है, अपने मित्रों, मन्त्रियों, सम्बन्धियों, भाइयों, पुत्रों, हितैषियों, भोग्य वस्तुओं, अपनी स्त्रियों और लङ्का का नाश मत कराओ।

➤ चतुस्त्रिंशः सर्गः ➤ (३४)

हनुमान् के वध का आदेश—

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा वानरस्य महात्मनः।
आज्ञापयत्तस्य वधं रावणः क्रोधमूर्छितः॥ १॥

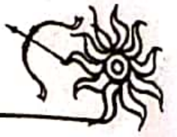
महात्मा हनुमान् की इन बातों को सुनकर क्रोधमूर्छित रावण ने उसके वध की आज्ञा प्रदान की।

वधे तस्य समाज्ञप्ते रावणेन दुरात्मना।
निवेदितवतो दौत्यं नानुमेने विभीषणः॥ २॥

जब दुरात्मा रावण ने हनुमान् को मार डालने की आज्ञा दी तब अपने आपको दूत बतानेवाले हनुमान् के वध का विभीषण ने अनुमोदन नहीं किया।

निश्चितार्थस्ततः साम्ना पूज्यं शत्रुजिदग्रजम्।
उवाच हितमत्यर्थं वाक्यं वाक्यविशारदः॥ ३॥

शत्रु को जीतनेवाले, वाणीविशारद विभीषण कर्तव्याकर्तव्य का निश्चय करके अपने ज्येष्ठ भ्राता रावण का सम्मान कर और साम-नीति का आश्रय



लेकर ये हितकारी वचन बोले—

क्षमस्व रोषं त्यज राक्षसेन्द्र
प्रसीद मद्वाक्यमिदं शृणुष्व।
वधं न कुर्वन्ति परावरज्ञा
दूतस्य सन्तो वसुधाधिपेन्द्राः॥ ४॥

हे राक्षसेन्द्र! क्रोध को त्यागिये और क्षमा को धारण कीजिए। आप प्रसन्न होकर मेरी इन बातों को सुनिए। हे राजन्! पूर्वापर का विवेक रखनेवाले राजा लोग दूत का वध कदापि नही करते।

राजधर्मविरुद्धं च लोकवृत्तेश्च गर्हितम्।
तव चासदृशं वीर कपेरस्य प्रमापणम्॥ ५॥

हे वीर! इस वानर को प्राणदण्ड देना राजधर्म[1] के विरुद्ध और लोकाचार से निन्दित है। यह कार्य आप जैसे वीर व्यक्ति के अनुरूप भी नहीं है।

तस्मात्प्रसीद शत्रुघ्न राक्षसेन्द्र दुरासद।
युक्तायुक्तं विनिश्चित्य दूते दण्डो विधीयताम्॥ ६॥

हे शत्रुसंहारक! अजेय राक्षसेन्द्र! आप प्रसन्न हो जाइए। पहले आप उचित-अनुचित का विचार कर लें फिर दूत को दण्ड दें।

विभीषणवचः श्रुत्वा रावणो राक्षसेश्वरः।
रोषेण महताविष्टो वाक्यमुत्तरमब्रवीत्॥ ७॥

राक्षसराज रावण विभीषण की इन बातों को सुनकर और भी अधिक क्रुद्ध हुआ और उनकी बातों का उत्तर देता हुआ बोला—

न पापानां वधे पापं विद्यते शत्रुसूदन।
तस्मादेनं वधिष्यामि वानरं पापकारिणम्॥ ८॥

हे शत्रुनाशक! पापी को मारने में पाप नहीं लगता, अतः मैं इस पापकर्म करनेवाले राक्षस को प्राणदण्ड अवश्य दूँगा।

अधर्ममूलं बहुदोषयुक्तं
अनार्यजुष्टं वचनं निशम्य।
उवाच वाक्यं परमार्थतत्त्वं
विभीषणो बुद्धिमतां वरिष्ठः॥ ९॥

बुद्धिमानों में श्रेष्ठ विभीषण, रावण के अधर्म-मूलक, अनेक दोषों से युक्त, अनार्य जनोचित बातों को सुनकर परमार्थतत्त्वयुक्त ये वचन बोले—

प्रसीद लङ्केश्वर राक्षसेन्द्र
धर्मार्थयुक्तं वचनं शृणुष्व।
दूतानवध्यान्समयेषु राजन्
सर्वेषु सर्वत्र वदन्ति सन्तः॥ १०॥

हे लंकेश्वर! हे राक्षसेन्द्र! आप प्रसन्न हूजिए और धर्म तथा अर्थयुक्त मेरे वचनों को सुनिए। 'दूत सर्वदा और सर्वत्र अवध्य हैं'—ऐसा सज्जनों का निर्णय है।

असंशयं शत्रुरयं प्रवृद्धः
कृतं ह्यनेनाप्रियमप्रमेयम्।
न दूतवध्यां प्रवदन्ति सन्तो
दूतस्य दृष्टा बहवो हि दण्डाः॥ ११॥

निस्संदेह यह बहुत बड़ा शत्रु है, इसने अपराध भी बहुत बड़ा किया है फिर भी सज्जन-पुरुषों के मतानुसार दूत का वध उचित नहीं। प्राणदण्ड के अतिरिक्त दूतों के लिए और भी बहुत-से दण्ड हैं।

वैरूप्यमङ्गेषु कशाभिघातो
मौण्ड्यं तथा लक्षणसन्निपातः।
एतान्हि दूते प्रवदन्ति दण्डान्
वधस्तु दूतस्य न नः श्रुतोऽस्ति॥ १२॥

कोई अङ्ग भङ्ग कर देना, कोड़े लगवाना, सिर मुँडवा देना, गर्म लोहे से दूत के शरीर में कोई चिह्न लगवा देना—विधानतः दूतों के लिए ये ही दण्ड माने गये हैं। दूतों के लिए प्राणदण्ड मैंने आज तक

१. नीतिशास्त्र के अनुसार—

उद्यतेष्वपि शस्त्रेषु बन्धुवर्गवधेष्वपि।
परुषाण्यपि जलपन्तो वध्या दूता न भूभुजा॥

गर्दन के ऊपर शस्त्र के उठे रहने पर, समस्त बन्धु-वर्ग का वध हो जाने पर और कठोर वाक्यों के कहने पर भी राजा दूतों को न मारे।



नहीं सुना।

साधुर्वा यदि वाऽसाधुः परैरेष समर्पितः।
ब्रुवन् परार्थं परवान्न दूतो वधमर्हति॥ १३॥

यह सज्जन है या दुष्ट, यह प्रश्न नहीं है, प्रश्न तो यह है कि यह दूसरे के द्वारा भेजा गया है। यह दूसरे का है और दूसरे का ही संदेश कहता है, अतः इस पराधीन दूत का वध करना उचित नहीं है।

◀ पञ्चत्रिंशः सर्गः ▶ (३५)

लङ्का-दहन—

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा दशग्रीवो महात्मनः।
देशकालहितं वाक्यं भ्रातुरुत्तरमब्रवीत्॥ १॥

महात्मा विभीषण के देशकालोचित इन वचनों को सुनकर रावण ने कहा—

सम्यगुक्तं हि भवता दूतवध्या विगर्हिता।
अवश्यं तु वधादन्यः क्रियतामस्य निग्रहः॥ २॥

आपका कहना ठीक है। सचमुच दूत का वध करना निन्द्यकर्म है, परन्तु प्राणदण्ड के अतिरिक्त इसे और कोई दण्ड तो दिया ही जाना चाहिए।

कपीनां किल लाङ्गूलमिष्टं भवति भूषणम्।
तदस्य दीप्यतां शीघ्रं तेन दग्धेन गच्छतु॥ ३॥

वानर-जाति के लोगों के लिए इनका लाङ्गूल[1] सबसे प्रिय एवं उत्तम आभूषण होता है, अतः इसके लाङ्गूल को जला दो। यह अपना जला हुआ लाङ्गूल लेकर यहाँ से जाए।

आज्ञापयद्राक्षसेन्द्रः पुरं सर्वं सचत्वरम्।
लाङ्गूलेन प्रदीप्तेन रक्षोभिः परिणीयताम्॥ ४॥

अतः राक्षसराज रावण ने आज्ञा दी कि इसकी लाङ्गूल में अग्नि लगा कर राक्षस लोग इसे चौराहों और नगर मे सर्वत्र घुमायें।

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा राक्षसाः कोपकर्कशाः।
वेष्टयन्ति स्म लाङ्गूलं जीर्णैः कर्पासकैः पटैः॥ ५॥

रावण की आज्ञा पाकर महाक्रोधी वे राक्षस फटे-पुराने वस्त्रों को उसकी लाङ्गूल में लपेटने लगे।

तैलेन परिषिच्याथ तेऽग्निं तत्रावपातयन्।
निबद्धः कृतवान्वीरस्तत्कालसदृशीं मतिम्॥ ६॥

फटे-पुराने वस्त्र लपेटकर और तेल से भिगोकर राक्षसों ने उस लाङ्गूल में आग लगा दी। जब अग्नि प्रदीप्त हो गई तब पाश में बँधे हुए हनुमान् ने उस

---

१. प्रायः टीकाकारों ने लाङ्गूल का अर्थ पूँछ किया है, परन्तु यह अर्थ ठीक नहीं है। जब किष्किन्धाकाण्ड २। २८, २९ में हनुमान् को वेदादि शास्त्रों और व्याकरण का विद्वान् बताया है तब उन्हें पूँछवाला बन्दर कहना मूर्खता है। बाली, सुग्रीव, अङ्गद आदि सभी मनुष्य थे इनके लिए '**आर्य**' विशेषण का प्रयोग यत्र-तत्र हुआ है। तारा को **मन्त्रवित्** कहा गया है।
एक बात बड़ी विचित्र है कि यह पूँछ पुरुषों के ही दिखाई गई है तारा, रुमा आदि वानर स्त्रियों के लिए कहीं भी पूँछ का उल्लेख नहीं है। क्या कहीं ऐसे बन्दर भी होते हैं कि बन्दरों के तो पूँछ हो और और बन्दरियों के पूँछ ही न हो?
लाङ्गूल वानर जाति का राष्ट्रिय-चिह्न (Totem=टोटेम) था। इसे ये लोग बड़ी श्रद्धा और आदर की दृष्टि से देखते थे तथा इसके अपमान को जातीय अपमान समझते थे। रावण ने इसी राष्ट्रिय-चिह्न को जलाने की आज्ञा प्रदान की थी।
जैसे आजकल भी ग्वाले अपनी पगड़ी में मोर पंख लगा लेते हैं, परन्तु वह उनके शरीर का अङ्ग नहीं होता इसी प्रकार वानरजाति के लोग भी पूँछ सदृश कोई वस्तु लगा लेते थे। यह इनके शरीर का वास्तविक अङ्ग नहीं था।
इस विषय में अधिक जानकारी के लिए हमारा '**मर्यादा-पुरुषोत्तम राम**' पढ़िए।



समय के अनुरूप यह विचार स्थिर किया—

रात्रौ न हि सुदृष्टा मे दुर्गकर्मविधानतः।
अवश्यमेव द्रष्टव्या मया लङ्का निशाक्षये॥ ७॥

दुर्ग की रक्षा की सुव्यवस्था के कारण मैं रात्रि में लंका को अच्छी तरह नहीं देख सका, अतः दिन में मुझे सम्पूर्ण लंका को अच्छी तरह देख लेना चाहिए।

ततस्ते संवृताकारं सत्त्ववन्तं महाकपिम्।
परिगृह्य ययुर्हृष्ट राक्षसाः कपिकुञ्जरम्॥ ८॥
शङ्खभेरीनिनादस्तं घोषयन्तः स्वकर्मभिः।
राक्षसाः क्रूरकर्माणश्चारयन्ति स्म तां पुरीम्॥ ९॥

उधर तो हनुमान्जी मन-ही-मन में इस प्रकार सोच रहे थे, इधर वे क्रूरकर्मा राक्षस गूढ़स्वभाव, महाबली, वानरश्रेष्ठ हनुमान् को पकड़कर प्रसन्न होते हुए, शंख, भेरी आदि के द्वारा उनके कृत्यों की घोषणा करते हुए उन्हें उस नगरी में घुमाने लगे।

वीक्षमाणस्ततो लङ्कां कपिः कृतमनोरथः।
वर्धमानसमुत्साहः कार्यशेषमचिन्तयत्॥ १०॥

लंका नगरी को देखते हुए सफल मनोरथ हनुमान्जी का उत्साह बढ़ रहा था, अतः वे अवशिष्ट कार्य के विषय में विचार करने लगे।

किन्नु खल्ववशिष्टं मे कर्तव्यमिह साम्प्रतम्।
यदेषां रक्षसां भूयः सन्तापजननं भवेत्॥ ११॥

वे सोचने लगे—इस नगरी में मेरा ऐसा कौन-सा कार्य अवशिष्ट रह गया है जिसके करने से राक्षसों का सन्ताप और अधिक बढ़े।

वनं तावत्प्रमथितं प्रकृष्टा राक्षसा हताः।
बलैकदेशः क्षपितः शेषं दुर्गविनाशनम्॥ १२॥

मैंने रावण के प्रमदावन=अशोकवटिका का विध्वंस कर दिया। चुने हुए पराक्रमी राक्षसों को मार डाला। सेना के एक भाग को भी मैंने नष्ट कर दिया। अब तो केवल दुर्ग का नाश करना शेष रह गया है।

दुर्गे विनाशिते कर्म भवेत्सुखपरिश्रमम्।
अल्पयत्नेन कार्येऽस्मिन्मम स्यात्सफलः श्रमः॥ १३॥

दुर्ग को नष्ट कर देने से मेरा परिश्रम सार्थक हो जाएगा। यह कार्य थोड़े ही परिश्रम से पूर्ण हो जाएगा, मुझे अधिक श्रम नहीं करना पड़ेगा।

ततः प्रदीप्तलाङ्गूलः सविद्युदिव तोयदः।
भवनाग्रेषु लङ्काया विचचार महाकपिः॥ १४॥

ऐसा निश्चय करके विद्युत् युक्त मेघ के समान जलते हुए लाङ्गूल को लिए हुए हनुमान् लंका के उत्तम भवनों पर विचरने लगे।

गृहाद् गृहं राक्षसानामुद्यानानि च वानरः।
वीक्षमाणो ह्यसन्त्रस्तः प्रासादांश्च चचार सः॥ १५॥

राक्षसों के एक घर से दूसरे घर पर तथा जहाँ-तहाँ उद्यानों को देखते हुए वीर हनुमान् निर्भय हो कर महलों पर घूमने लगे।

अवप्लुत्य महावेगः प्रहस्तस्य निवेशनम्।
अग्निं तत्र स निक्षिप्य श्वसनेन समो बली॥ १६॥

कूदते-फाँदते पवन के समान वेगवान् हनुमान्जी मन्त्रीवर प्रहस्त के घर पर जा चढ़े और उसमें आग लगा दी।

ततोऽन्यत्पुप्लुवे वेश्म महापार्श्वस्य वीर्यवान्।
मुमोच हनुमानग्निं कालानलशिखोपमम्॥ १७॥

तत्पश्चात् महाबलवान् हनुमान् महापार्श्व के गृह में घुस गये और प्रलयकालाग्नि के समान उसमें आग लगा दी।

वज्रदंष्ट्रस्य च तथा पुप्लुवे स महाकपिः।
शुकस्य च महातेजाः सारणस्य च धीमतः॥ १८॥

फिर वे वज्रदंष्ट्र के भवन पर कूद पड़े और उसमें भी अग्निप्रचण्ड कर उन्होंने महातेजस्वी शुक और बुद्धिमान् सारण के घरों को भी जला दिया।

तथा चेन्द्रजितो वेश्म ददाह हरियूथपः।
जम्बुमालेः सुमालेश्च ददाह भवनं ततः॥ १९॥

तत्पश्चात् वानरश्रेष्ठ हनुमान् ने इन्द्रजित् के गृह को जला दिया। इसी प्रकार जम्बुमालि और सुमालि के घरों को भी दग्ध कर दिया।

वर्जयित्वा महातेजा विभीषणगृहं प्रति।
क्रममाणः क्रमेणैव ददाह हरिपुङ्गवः॥ २०॥



महातेजस्वी कपिश्रेष्ठ हनुमान् ने केवल विभीषण के घर को छोड़कर शेष राक्षस-भवनों को घूम-घूम कर जला दिया।

तेषु तेषु महार्हेषु भवनेषु महायशाः।
गृहेष्वृद्धिमतामृद्धिं ददाह स महाकपिः॥ २१॥

महाबली एवं यशस्वी हनुमान् ने उन धनिकों के विशाल भवनों में जो-जो मूल्यवान् अन्न, वस्त्र, द्रव्य, मणि-मुक्ता आदि सम्पत्ति थी उस सबको भस्म कर डाला।

सर्वेषां समतिक्रम्य राक्षसेन्द्रस्य वीर्यवान्।
आससादाथ लक्ष्मीवान्रावणस्य निवेशनम्॥ २२॥

पराक्रमी हनुमान् सब भवनों को जलाकर राक्षसराज रावण के गृह पर पहुँच गये।

ततस्तस्मिन्गृहे मुख्ये प्रदीप्तमग्निमुत्सृज्य।
ननाद हनुमान् वीरो युगान्तजलदो यथा॥ २३॥

रावण के उस मुख्य महल में प्रदीप्ताग्नि छोड़कर हनुमान्जी ऐसे जोर से गर्जे जैसे प्रलयकालीन मेघ गरजते हैं।

हनूमता वेगवता वानरेण महात्मना।
लङ्कापुरं प्रदग्धं तद्रुद्रेण त्रिपुरं यथा॥ २४॥

इस प्रकार महाबली हनुमान् ने सारी लंका को जलाकर इस प्रकार भस्म कर डाला जिस प्रकार महादेवजी ने त्रिपुरासुर को भस्म किया था।

भङ्क्त्वा वनं महातेजा हत्वा रक्षांसि संयुगे।
दग्ध्वा लङ्कापुरीं रम्यां रराज स महाकपिः॥ २५॥

महातेजस्वी हनुमान् अशोकवाटिका को उजाड़, युद्ध में राक्षसों को मार और रमणीक लंकापुरी को जलाकर अत्यन्त शोभा को प्राप्त हुए।

❮ षट्त्रिंशः सर्गः ❯ (३६)

हनुमान् की आशङ्का—

सन्दीप्यमानां विध्वस्तां त्रस्तरक्षोगणां पुरीम्।
अवेक्ष्य हनुमाँल्लङ्कां चिन्तयामास वानरः॥ १॥

जलती हुई और विध्वस्त लंका को तथा भयभीत राक्षसों को देखकर हनुमान्जी अत्यन्त चिन्तित हो उठे।

तस्याभूत्सुमहांस्त्रासः कुत्सा चात्मन्यजायत।
लङ्कां प्रदहता कर्म किं स्वित्कृतमिदं मया॥ २॥

उनके मन में एक बहुत बड़ा भय उत्पन्न हो गया। वे मन-ही-मन अपनी निन्दा करने लगे कि मैंने लंकापुरी को जलाकर यह क्या अनर्थ कर डाला?

धन्यास्ते पुरुषश्रेष्ठा ये बुद्ध्या कोपमुत्थितम्।
निरुन्धन्ति महात्मानो दीप्तमग्निमिवाम्भसा॥ ३॥

वे पुरुषश्रेष्ठ धन्य हैं जो उठे हुए क्रोध को बुद्धि के द्वारा इस प्रकार शान्त कर देते हैं जिस प्रकार जल के द्वारा प्रदीप्त अग्नि शान्त कर दी जाती है।

क्रुद्धः पापं न कुर्यात्कः क्रुद्धो हन्याद्गुरूनपि।
क्रुद्धः परुषया वाचा नरः साधूनधिक्षिपेत्॥ ४॥

क्रोध के वशीभूत होकर मनुष्य कौन-सा पाप नहीं कर डालता? क्रोध के आवेग में मनुष्य अपने गुरुजनों को भी मार डालता है। क्रोधी मनुष्य अपने कठोर वाक्यों से सज्जनों का भी तिरस्कार कर सकता है।

वाच्यावाच्यं प्रकुपितो न विजानाति कर्हिचित्।
नाकार्यमस्ति क्रुद्धस्य नावाच्यं विद्यते क्वचित्॥ ५॥

क्या कहना चाहिए और क्या न कहना चाहिए—क्रोधी मनुष्य के लिए कुछ भी अवक्तव्य या अकर्तव्य शेष नहीं रह जाता।

यः समुत्पतितं क्रोधं क्षमयैव निरस्यति।
यथोरगस्त्वचं जीर्णां स वै पुरुष उच्यते॥ ६॥

जो व्यक्ति अपने उठे हुए क्रोध को क्षमा के द्वारा वैसे ही निकाल कर बाहर कर देता है जैसे सर्प



पुरानी केंचुली को—वही व्यक्ति पुरुष कहलाने योग्य है।

धिगस्तु मां सुदुर्बुद्धिं निर्लज्जं पापकृत्तमम्।
अचिन्तयित्वा तां सीतामग्निदं स्वामिघातकम्॥ ७॥

बिना विचारे सीता को अग्नि द्वारा जला देनेवाले स्वामीघातक, पापकारी, निर्लज्ज एवं दुर्बुद्धि मुझको धिक्कार है।

किमग्नौ निपताम्यद्य आहोस्विद्बडवामुखे।
शरीरमाहो सत्त्वानां दद्मि सागरवासिनाम्॥ ८॥

अब मैं क्या करूँ? क्या मैं अग्नि में कूद पड़ूँ? अथवा समुद्र के बड़वानल (सन्तप्त समुद्र की जलधारा) में कूद पड़ूँ अथवा समुद्र में रहनेवाले जल-जन्तुओं का आहार बन जाऊँ?

स तथा चिन्तयंस्तत्र देव्या धर्मपरिग्रहम्।
शुश्राव हनुमान्वाक्यं चारणानां महात्मनाम्॥ ९॥

जब हनुमान्जी इस प्रकार विचार कर रहे थे तब उन्हें महात्मा चारणों के ये शब्द सुनाई पड़े—

अहो खलु कृतं कर्म दुष्करं हि हनूमता।
अग्निं विसृजताऽभीक्ष्णं भीमं राक्षससद्मनि॥ १०॥

अहो! हनमान् ने यह कैसा दुष्कर कर्म कर डाला जो सम्पूर्ण राक्षसों के घरों में भीषण आग लगा दी।

दग्धेयं नगरी सर्वा साट्टप्राकारतोरणा।
जानकी न च दग्धेति विस्मयोऽद्भुत एव नः॥ ११॥

गगनचुम्बी अट्टालिकाओं, प्राकारों=चाहर-दीवारी और तोरणद्वारों सहित सारी-की-सारी लङ्का भस्म हो गई, किन्तु जनकनन्दिनी सीता नहीं जली यह कितनी अद्भुत और आश्चर्यजनक बात है।

ततः कपिः प्राप्तमनोरथार्थः
तामक्षतां राजसुतां विदित्वा।
प्रत्यक्षतस्तां पुनरेव दृष्ट्वा
प्रतिप्रयाणाय मतिं चकार॥ १२॥

चारण लोगों के वचनों से सीताजी को सुरक्षित जानकर हनुमान् ने अपने आपको सफल मनोरथ समझा। 'सीता को एक बार पुनः अपनी आँखों से प्रत्यक्ष देखकर तब इस नगरी से प्रस्थान करना चाहिए'—ऐसा हनुमान् ने निश्चय किया।

➤ सप्तत्रिंशः सर्गः ➤ (३७)

लङ्का से लौटने के लिए समुद्र-लंघन—

ततस्तां शिंशपामूले जानकीं पर्यवस्थिताम्।
अभिवाद्याब्रवीद्दिष्ट्या पश्यामि त्वामिहाक्षताम्।
अभिवाद्याब्रवीद्दिष्ट्या पश्यामि त्वामिहाक्षताम्॥ १॥

अपने मन में ऐसा निश्चयकर हनुमान् अशोकवृक्ष की छाया में बैठी हुई जनकनन्दिनी सीता को प्रणाम करके बोले—हे देवि! सौभाग्य से मैं आपको सकुशल देख रहा हूँ।

ततस्तं प्रस्थितं सीता वीक्षमाणा पुनः पुनः।
भर्तृस्नेहान्वितं वाक्यं हनुमन्तमभाषत॥ २॥

तब वापस लौटने के लिए तैयार हनुमान् को बार-बार देखकर पतिस्नेह-परायणा सीता हनुमान्जी से बोली—

शरैः सुसङ्कुलां कृत्वा लङ्कां परबलार्दनः।
मां नयेद्यदि काकुत्स्थस्तत्तस्य सदृशं भवेत्॥ ३॥

शत्रुओं के बल को खण्डित करनेवाले श्रीराम यदि अपने बाणों से सम्पूर्ण लङ्का को आतंकित करके मुझे यहाँ से ले जाएँ तो यह कार्य उनके अनुरूप ही होगा।

तदर्थोपहितं वाक्यं प्रश्रितं हेतुसंहितम्।
निशम्य हनुमांस्तस्या वाक्यमुत्तरमब्रवीत्॥ ४॥

सीताजी के अर्थ-परिपूर्ण, युक्तियुक्त तथा स्नेहसिक्त इन वचनों को सुनकर हनुमान् ने कहा—

क्षिप्रमेष्यति काकुत्स्थो हर्यृक्षप्रवरैर्वृतः।
यस्ते युधि विजित्यारीञ्शोकं व्यपनयिष्यति॥ ५॥

हे देवि! ऋक्ष और वानरों की विशाल सेना लेकर श्रीराम शीघ्र ही यहाँ आयेंगे और युद्ध में शत्रुओं को मारकर तुम्हारा शोक दूर करेंगे।

एवमाश्वास्य वैदेहीं हनुमान् मारुतात्मजः।
गमनाय मतिं कृत्वा वैदेहीमभ्यवादयत्॥ ६॥

इस प्रकार पवनपुत्र हनुमान् ने सीता को आश्वासन देकर और वहाँ से प्रस्थानित होने का विचार कर, विदेहराजकुमारी सीता को प्रणाम किया।

ततः स कपिशार्दूलः स्वामिसंदर्शनोत्सुकः।
आरुरोह गिरिश्रेष्ठमरिष्टमरि मर्दनः॥ ७॥

सीता को प्रणाम कर और उनकी अनुमति ले शत्रु का मान-मर्दन करनेवाले कपिश्रेष्ठ हनुमान्जी श्रीराम के दर्शनों की उत्सुकता से अरिष्ट नामक पर्वतश्रेष्ठ पर चढ़ गये।

अधिरुह्य ततो वीरः पर्वतं पवनात्मजः।
ददर्श सागरं भीमं मीनोरगनिषेवितम्॥ ८॥

उस पर्वत पर चढ़कर हनुमान् ने मछलियों और सर्पों से परिपूर्ण उस भयंकर समुद्र को देखा।

स मारुत इवाकाशं मारुतस्यात्मसम्भवः।
प्रपेदे हरिशार्दूलो दक्षिणादुत्तरां दिशम्॥ ९॥

वहाँ से पवनपुत्र हनुमान्जी आकाशचारी पवन की भाँति (अपने विमान द्वारा) बड़ी तीव्रता के साथ दक्षिण-तट से उत्तर-तट की ओर उड़ चले।

◀ अष्टात्रिंशः सर्गः ▶ (३८)

हनुमान् का लौटना—

हनुमान् मारुतगतिर्महानौरिव सागरम्।
अपारमपरिश्रान्तः पुप्लुवे गगनार्णवम्॥ १॥

जैसे विशाल नौका सागर में चलती है उसी प्रकार हनुमान्जी वायु के समान तीव्र गति से बिना किसी थकावट के आकाशरूपी सागर में चले जाते थे।

स किञ्चिदनुसम्प्राप्तः समालोक्य महागिरिम्।
महेन्द्रं मेघसंकाशं ननाद हरिपुङ्गवः॥ २॥

जब विशाल महेन्द्रपर्वत कुछ ही दूर रह गया तब हनुमान् ने विद्युत् पूर्ण मेघ के समान भयंकर गर्जना की।

निशम्य नदतो नादं वानरास्ते समन्ततः।
बभूवुरुत्सुकाः सर्वे सुहृद्दर्शनकाङ्क्षिणः॥ ३॥

हनुमान् के उस गम्भीर-गर्जन को सुनकर, हनुमान् की प्रतीक्षा में बैठे हुए उसके वानर साथी अपने बन्धु का दर्शन करने के लिए उत्सुक हो उठे।

जाम्बवांस्तु हरिश्रेष्ठः प्रीतिसंहृष्टमानसः।
उपामन्त्र्य हरीन्सर्वानिदं वचनमब्रवीत्॥ ४॥

कपिश्रेष्ठ जाम्बवान् अत्यन्त प्रसन्न और अपने सभी साथियों को एकत्र कर बोले—

सर्वथा कृतकार्योऽसौ हनुमान्नात्र संशयः।
न ह्यस्याकृतकार्यस्य नाद एवंविधो भवेत्॥ ५॥

हनुमान् अपने कार्य में सफल मनोरथ होकर आ रहे हैं इसमें तनिक भी संदेह नहीं है। कार्य में असफल होने पर वे इस प्रकार की गर्जना कदापि न करते।

ते प्रीताः पादपाग्रेषु गृह्य शाखाः सुपुष्पिताः।
वासांसीव प्रशाखाश्च समाविध्यन्त वानराः॥ ६॥

जाम्बवान् के इन वचनों को सुनकर हनुमान् के दर्शन के लिए समुत्सुक वे वानर पुष्पित वृक्षों की ऊँची चोटियों पर चढ़ गये और वस्त्रों की भाँति उनकी शाखाओं को हिलाने लगे।

तमभ्रघनसङ्काशमापतन्तं महाकपिम्।
दृष्ट्वा ते वानराः सर्वे तस्थुः प्राञ्जलयस्तदा॥ ७॥

घने मेघ के समान महावीर हनुमान् को आकाश-मार्ग से आते हुए देखकर सब वानर हाथ जोड़कर खड़े हो गये।



ततस्तु वेगवांस्तस्य गिरेर्गिरिनिभः कपिः।
निपपात महेन्द्रस्य शिखरे पादपाकुले॥ ८॥

तब वेगवान् और विशालकाय हनुमान्‌जी वृक्षों से परिपूर्ण महेन्द्र पर्वत के ऊपर उतरे।[१]

ततस्ते प्रीतमनसः सर्वे वानरपुङ्गवाः।
हनुमन्तं महात्मानं परिवार्योपतस्थिरे॥ ९॥

तब वे सभी वानरगण अत्यधिक हर्षित होकर महात्मा हनुमान् को चारों ओर से घेर कर खड़े हो गये।

प्रहृष्टवदनाः सर्वे फलमूलानि चादाय।
प्रत्यर्चयन्हरिश्रेष्ठं हरयो मारुतात्मजम्॥ १०॥

वे सब प्रसन्न होते हुए और मूल एवं फलों की भेंट ला-लाकर कपिश्रेष्ठ पवनपुत्र हनुमान्‌जी का आतिथ्य करने लगे।

हनुमानस्तु गुरून्वृद्धाञ्जाम्बवत्प्रमुखांस्तदा।
कुमारमङ्गदं चैव सोऽवन्दत महाकपिः॥ ११॥

हनुमान्‌जी ने भी पूज्य एवं वृद्ध जाम्बवान्, प्रमुख सेनापतियों और कुमार अङ्गद को प्रणाम किया।

स ताभ्यां पूजितः पूज्यः कपिभिश्च प्रसादितः।
दृष्टा सीतेति विक्रान्तः संक्षेपेण न्यवेदयत्॥ १२॥

जाम्बवान् तथा अङ्गद एवं वानरी सैनिकों से सत्कृत होकर हनुमान्‌जी ने उन सबको सीता के देखने का वृत्तान्त संक्षेप में कह सुनाया।

ततो दृष्टेति वचनं महार्थममृतोपमम्।
निशम्य मारुतेः सर्वे मुदिता वानराभवन्॥ १३॥

'मैंने सीता को देखा है'—हनुमान् के मुख से इस अमृत के तुल्य और अर्थ-परिपूर्ण वचन के निकलते ही समस्त वानर-मण्डली आनन्द-विभोर हो उठी।

➤ एकोनचत्वारिंशः सर्गः ➤ (३९)

मधुवन-विध्वंस—

प्रीतिमन्तस्ततः सर्वे वायुपुत्रपुरःसराः।
महेन्द्राद्रिं परित्यज्य पुप्लुवुः प्लवगर्षभाः॥ १॥

सीता-दर्शन का वृत्तान्त सुनने के पश्चात् वे सभी वानर वीर पवनपुत्र हनुमान्‌जी को आगे कर प्रसन्न होते हुए महेन्द्र पर्वत की चोटी से उतर कर उछलते-कूदते चल दिये।

प्लवमानाः खमुत्पत्य ततस्ते काननौकसः।
नन्दनोपममासेदुर्वनं द्रुमलतायुतम्॥ २॥

वह मनस्वी वानर दल उछलता-कूदता इन्द्र के नन्दन वन के समान शोभायमान वृक्षों और लताओं से युक्त एक उपवन के समीप पहुँचा।

यत्तन्मधुवनं नाम सुग्रीवस्याभिरक्षितम्।
अधृष्यं सर्वभूतानां सर्वभूतमनोहरम्॥ ३॥

सम्पूर्ण प्राणिवर्ग के लिए अत्यन्त मनोहर तथा सभी के लिए दुष्प्रवेश्य सम्राट् सुग्रीव के द्वारा रक्षित उस राजकीय वन का नाम 'मधुवन' था।

यद्रक्षति महावीर्यः सदा दधिमुखः कपिः।
मातुलः कपिमुख्यस्य सुग्रीवस्य महात्मनः॥ ४॥

इस वन की रक्षा वानरराज महात्मा सुग्रीव का मामा महाबली दधिमुख किया करता था।

ते तद्वनमुपागम्य बभूवः परमोत्कटाः।
वानरा वानरेन्द्रस्य मनः कान्ततमं महत्॥ ५॥

वानरेन्द्र सुग्रीव के उस अत्यन्त मनोहर महावन के समीप पहुँचकर वे वानर कार्यसिद्धि के कारण

१. यहाँ हनुमान्‌जी का पर्वत-शिखर पर '**निपपात**'—उतरने का वर्णन है, अतः स्पष्ट है कि हनुमान्‌जी विमान द्वारा लंका में गये थे और विमान द्वारा ही लौटे थे। यदि वे तैर कर आते तो पर्वत पर चढ़ते, उतरते नहीं।



उद्धत एवं फल खाने के लिए उत्सुक हो उठे।

ततस्ते वानराः हृष्टा दृष्ट्वा मधुवनं महत्।
कुमारमभ्ययाचन्त मधूनि मधुपिङ्गलाः ॥ ६ ॥

उस विशाल मधुवन को देखकर मधु के समान पीत (गौर) वर्णवाले वानर प्रसन्न हो गये और उन्होंने कुमार अङ्गद से उन मधु फलों को खाने और मधु पीने की याचना की।

ततः कुमारस्तान्वृद्धाञ्जाम्बवत्प्रमुखान्कपीन्।
अनुमान्य ददौ तेषां निसर्गं मधुभक्षणे ॥ ७ ॥

उन वानरों के प्रार्थना करने पर अङ्गद ने जाम्बवान् आदि बड़े-बूढ़े वानरों से विचार-विमर्श कर उन वानरों को मधुवन में जाने तथा मधुफल खाने की आज्ञा प्रदान कर दी।

ततश्चानुमताः सर्वे सम्प्रहृष्टा वनौकसः।
पपुः सर्वे मधु तदा रसवत्फलमाददुः ॥ ८ ॥

आज्ञा पाते ही वे सब वानर हर्षित हो गये। वे वन में घुसकर मधु पीने लगे और रसीले फलों को खाने लगे।

उत्पत्य च ततः सर्वे वनपालान्समागतान्।
ताडयन्ति स्म शतशः सक्तान्मधुवने तदा ॥ ९ ॥

मधु पीनेवाले और फल खानेवाले उन वानरों को ऐसा करने से रोकने के लिए जब सैकड़ों रक्षक वहाँ आये तब ये वानर लोग उछल-उछल कर उन्हें मारने लगे।

ततो दधिमुखो क्रुद्धो हतं मधुवनं दृष्ट्वा।
जगाम सहसोत्पत्य सुग्रीवो यत्र वानरः ॥ १० ॥

वन को नष्ट हुआ देखकर दधिमुख अत्यन्त क्रुद्ध होकर, आकाश मार्ग-से तुरन्त वहाँ पहुँचा जहाँ सुग्रीव विद्यमान थे।

सन्निपत्य दधिमुखः सुग्रीवमब्रवीद्वचः।
वनं निसृष्टपूर्वं हि भक्षितं तत्तु वानरैः ॥ ११ ॥

वहाँ पहुँच, भूमि पर उतर दधिमुख ने सुग्रीव से कहा—हे राजन्! जिस मधुवन को आपने कभी किसी को इच्छानुसार भोगने नहीं दिया—उसी वन को वानरों ने खा डाला।

इमे हि संरब्धतरास्तथा तैः सम्प्रधर्षिताः।
वारयन्तो वनात्तस्मात्क्रुद्धवानरपुङ्गवैः ॥ १२ ॥

जब मेरे वन रक्षक अनुचर उन्हें रोकने लगे नब उन वानरपुङ्गवों ने उन्हें डरा-धमकाकार वन से बाहर निकाल दिया।

एवमेते हताः शूरास्त्वयि तिष्ठति भर्तरि।
कृत्स्नं मधुवनं चैव प्रकामं तैः प्रभक्ष्यते ॥ १३ ॥

हे राजन्! आप जैसे स्वामी के होते हुए मेरे अनुचर पीटे गये तथा सम्पूर्ण मधुवन के फलों और मधु को वे लोग स्वच्छन्द होकर खा-पी गये।

एवं विज्ञाप्यमानं तु सुग्रीवं वानरर्षभम्।
अपृच्छत्तं महाप्राज्ञो लक्ष्मणः परवीरहा ॥ १४ ॥

जिस समय दधिमुख वानर कपिश्रेष्ठ सुग्रीव से इस प्रकार निवेदन कर रहा था, उस समय शत्रुघाती एवं महाप्राज्ञ लक्ष्मणजी ने सुग्रीव से पूछा—

किमयं वानरो राजन् वनपः प्रत्युपस्थितः।
कं चार्थमभिनिर्दिश्य दुःखितो वाक्यमब्रवीत् ॥ १५ ॥

हे राजन्! यह वनरक्षक वानर यहाँ किसलिए लाया है और दुःखी होते हुए किस कार्य के सम्बन्ध में आपसे कह रहा है[१] ?

एवमुक्तस्तु सुग्रीवो लक्ष्मणेन महात्मना।
लक्ष्मणं प्रत्युवाचेदं वाक्यं वाक्यविशारदः ॥ १६ ॥

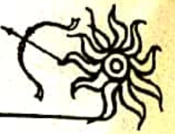
महात्मा लक्ष्मण के ऐसा पूछने पर वाक्य-विशारद सुग्रीव ने उत्तर दिया—

आर्य लक्ष्मण संप्राह वीरो दधिमुखः कपिः।
अङ्गदप्रमुखैर्वीरैर्भक्षितं मधु वानरैः ॥ १७ ॥

हे आर्य लक्ष्मण! वीर दधिमुख ने कहा है कि

---

१. इस वर्णन से यह ज्ञात होता है कि दधिमुख ने सुग्रीव से संस्कृत भाषा में बात न करके अपनी बोलचाल की भाषा में बात की थी जिसे श्रीराम और लक्ष्मण नहीं समझ सकें।



अङ्गद आदि वीर वानरों ने मधुवन के फलों और मधु को खा-पी डाला है।

विचित्य दक्षिणामाशामागतैर्हरिपुङ्गवैः।
नैषामकृतकृत्यानामीदृशः स्यादुपक्रमः॥ १८॥

इससे जान पड़ता है कि वे वानर वीर दक्षिण दिशा में सीता का पता लगा आये हैं, क्योंकि असफल-मनोरथ सैनिक ऐसा दुःसाहस नहीं कर सकते।

वनं यदभिपन्नं तैः साधितं कर्म वानरैः।
दृष्टा देवी न सन्देहो न चान्येन हनूमता॥ १९॥

यदि उन वानरों ने मधुवन को नष्ट किया है तो निश्चय ही उन लोगों ने कार्यसिद्ध कर लिया है। इसमें भी सन्देह नहीं कि सीता को हनुमान् ने ही देखा होगा अन्य किसी ने नहीं।

कार्यसिद्धिर्मतिश्चैव तस्मिन्वानरपुङ्गवे।
व्यवसायश्च वीर्यं च श्रुतं चापि प्रतिष्ठितम्॥ २०॥

हनुमान् उद्योगी हैं, बलवान् हैं और पण्डित हैं, उन्हीं में कार्य-सिद्धि की बुद्धि है।

जाम्बवान्यत्र नेता स्यादङ्गदश्च महाबलः।
हनूमांश्चाप्यधिष्ठाता न तस्य गतिरन्यथा॥ २१॥

जहाँ जाम्बवान् और अङ्गद जैसे नेता हों तथा जिस कार्य में हनुमान् जैसे अधिष्ठाता हों वहाँ पर कोई कार्य अपूर्ण कैसे रह सकता है?

अङ्गदप्रमुखैर्वीरैर्हतं मधुवनं किल।
एतदर्थमयं प्राप्तो वक्तुं मधुरवागिह॥ २२॥

सफल मनोरथ होकर अङ्गद आदि वानर वीरों ने उस मधुवन को नष्ट कर डाला है। यह बात कहने के लिए यह मधुरभाषी वानर मेरे पास आया है।

ततः प्रहृष्टो धर्मात्मा लक्ष्मणः सहराघवः।
श्रुत्वा कर्णसुखां वाणीं सुग्रीववदनाच्च्युताम्॥ २३॥

सुग्रीव के मुख से इस सुखदायक संवाद को सुनकर श्रीराम एवं लक्ष्मण अत्यन्त प्रसन्न हुए।

श्रुत्वा दधिमुखस्येदं सुग्रीवस्तु प्रहृष्य च।
वनपालं पुनर्वाक्यं सुग्रीवः प्रत्यभाषत॥ २४॥

दधिमुख के मुख से इस समाचार को सुनकर सुग्रीव भी अत्यन्त प्रसन्न हुए और उन्होंने वनरक्षक दधिमुख से कहा—

प्रीतोऽस्मि सोऽहं यद्भुक्तं वनं तैः कृतकर्मभिः।
मर्षितं मर्षणीयं च चेष्टितं कृतकर्मणाम्॥ २५॥

कृतकर्मा वानरों द्वारा वन के फल और मधु पीये जाने पर मैं प्रसन्न हूँ। सफल-मनोरथ उन लोगों की धृष्टतापूर्ण चेष्टा को मैंने क्षमा कर दिया।

गच्छ शीघ्रं मधुवनं संरक्षस्व त्वमेव हि।
शीघ्रं प्रेषय सर्वांस्तान्हनुमत्प्रमुखान्कपीन्॥ २६॥

अब तुम शीघ्रतापूर्वक यहाँ से लौट जाओ और पूर्ववत् तुम्हीं वन की रक्षा करो। हाँ, हनुमान् आदि सैनिकों को शीघ्र यहाँ भेज दो।

➤ चत्वारिंशः सर्गः ➤ (४०)

हनुमान् आदि का राम के समीप आगमन—

सुग्रीवेणैवमुक्तस्तु हृष्टो दधिमुखः कपिः।
स प्रणम्य तान् सर्वान् दिवमेवोत्पपात ह॥ १॥

सुग्रीव के ऐसा कहने पर दधिमुख प्रसन्न होता हुआ तथा सुग्रीव, राम और लक्ष्मण को प्रणाम कर आकाश[१]-मार्ग से चला गया।

१. रामायण में आकाश-मार्ग से जाने के इस प्रकार के अनेक वर्णन आते हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि रामायणकाल में अनेक व्यक्तियों के पास छोटे-छोटे वायुयान (mono-planes) होते थे जिनके द्वारा वे आकाश-मार्ग से गमन किया करते थे।

स प्रविष्टो मधुवनं बद्ध्वा करपुटाञ्जलिम्।
उवाच वचनं श्लक्ष्णमिदं हृष्टवदङ्गदम्॥ २॥

दधिमुख ने मधुवन में प्रविष्ट होकर तथा हाथ जोड़कर अङ्गद के समीप जाकर प्रसन्न होते हुए ये मधुर वचन कहे—

सौम्य रोषो न कर्तव्यो यदेभिरभिवारितः।
अज्ञानाद्रक्षिभिः क्रोधाद्भवन्तः प्रतिषेधिताः॥ ३॥

हे सौम्य! इन रक्षकों ने अज्ञानता के कारण क्रोध में भरकर आप लोगों को फल खाने और मधुपान करने से रोका है, उसके लिए आप इन पर क्रोध न करें।

युवराजस्त्वमीशश्च वनस्यास्य महाबल।
मौर्ख्यात्पूर्वं कृतो दोषस्तं भवान्क्षन्तुमर्हति॥ ४॥

हे महाबली! युवराज होने के कारण आप स्वयं ही इस वन के स्वामी हैं। पहले मूर्खतावश हम लोगों से जो अपराध हो गया है उसके लिए आप हमें क्षमा करें।

आख्यातं मया गत्वा पितृव्यस्य तवानघ।
शीघ्रं प्रेषय सर्वांस्तानिति होवाच प्रहृष्टः॥ ५॥

हे निष्पाप! जब मैंने आपके चाचा सुग्रीव के पास जाकर सम्पूर्ण वृत्तान्त सुनाया तब उन्होंने प्रसन्न होकर मुझसे कहा—समस्त वानरों को शीघ्र मेरे पास भेज दो।

श्रुत्वा दधिमुखस्यैतद्वचनं श्लक्ष्णमङ्गदः।
अब्रवीत्तान्हरिश्रेष्ठो वाक्यं वाक्यविशारदः॥ ६॥

वाक्यविशारद कपिश्रेष्ठ अङ्गद दधिमुख के इन वचनों को सुनकर वानर सैनिकों से बोले—

शङ्के श्रुतोऽयं वृत्तान्तो रामेण हरियूथपाः।
तत्क्षमं नेह नः स्थातुं कृते कार्ये परन्तपाः॥ ७॥

हे वानर यूथपतियो! ऐसा प्रतीत होता है कि हमारे आने का वृत्तान्त श्रीराम ने सुन लिया है, अतः हे शत्रुसंहारक वीरो! अब यहाँ अधिक समय तक रहना उचित नहीं है, क्योंकि यहाँ जो कार्य करना था वह हो चुका।

पीत्वा मधु यथाकामं विश्रान्ता वनचारिणः।
किं शेषं गमनं तत्र सुग्रीवो यत्र मे गुरुः॥ ८॥

हे पराक्रमी वनवासी सैनिको! आप सब लोग पेट भर मधुपान कर चुके और अपनी थकावट भी मिटा चुके। अब यहाँ कोई कार्य शेष नहीं रहा, अतः अब हम लोगों को पूज्य पितृव्य सुग्रीव के पास चलना चाहिए।

ब्रुवतश्चाङ्गदस्यैवं श्रुत्वा वचनमुत्तमम्।
प्रहृष्टमनसो वाक्यमिदमूचुर्वनौकसः॥ ९॥

अङ्गद के इन उत्तम वचनों को सुनकर वे सभी वनवासी सैनिक प्रसन्न होकर बोले—

सर्वे वयमपि प्राप्तास्तत्र गन्तुं कृतक्षणाः।
स यत्र हरिवीराणां सुग्रीवः पतिरव्ययः॥ १०॥

हम सभी लोग वहाँ जाने के लिए उत्कण्ठित हैं जहाँ प्रसन्नचित्त वानर-सम्राट् सुग्रीव विराज-मान हैं।

➤ एकचत्वारिंशः सर्गः ➤ (४१)

हनुमान् का राम को सीता का संदेश एवं चूड़ामणि देना—

ततः प्रस्रवणं शैलं ते गत्वा चित्रकाननम्।
प्रणम्य शिरसा रामं लक्ष्मणं च महाबलम्॥ १॥
हनुमन्तं पुरस्कृत्य सुग्रीवमभिवाद्य च।
प्रवृत्तिमथ सीतायाः प्रवक्तुमुपचक्रमुः॥ २॥

(मधु आदि भक्षण करने के पश्चात्) रङ्ग-बिरंगे पुष्पों से सुशोभित, रमणीय वन से युक्त, प्रस्रवण पर्वत पर जाकर महाबली राम और लक्ष्मण को प्रणाम करके तथा सुग्रीव को अभिवादन करने के पश्चात् हनुमान् को प्रमुख बनाकर उन वानरों ने सीताजी का सम्पूर्ण वृत्तान्त कहना आरम्भ किया।



दक्षिणस्य समुद्रस्य तीरे वसति दक्षिणे।
तत्र दृष्टा मया सीता रावणान्तःपुरे सती॥ ३॥

(हनुमान् ने कहा—) दक्षिण-समुद्र के दक्षिणी तट पर लङ्का नामक नगरी बसी हुई है। उस नगरी में रावण के अन्तःपुर में मैंने सीता को देखा है।

संन्यस्य त्वयि जीवन्ती रामा राम मनोरथम्।
दृष्टा मे राक्षसीमध्ये तर्ज्यमाना मुहुर्मुहुः॥ ४॥

हे राम! यह सीता अपने मनोरथों को आप में ही केन्द्रित करके जी रही है[1]। मैंने सीता को बार-बार डराये-धमकाये जाते हुए राक्षसियों के मध्य में बैठे देखा है।

राक्षसीभिर्विरूपाभी रक्षिता प्रमदावने।
दुःखमापद्यते देवी त्वया वीर सुखोचिता॥ ५॥

हे वीर राम! आपके साथ निरन्तर सुख भोगनेवाली सीता इस समय प्रमदा वन में विकराल राक्षसियों द्वारा पीड़ित होकर अत्यन्त दुःख उठा रही है।

रावणान्तःपुरे रुद्ध्वा राक्षसीभिः सुरक्षिता।
एकवेणीधरा दीना त्वयि चान्तः परायणा॥ ६॥
अधः शय्या विवर्णाङ्गी पद्मिनीव हिमागमे।
रावणाद्विनिवृत्तार्था मर्तव्यकृतनिश्चया॥ ७॥

रावण के अन्तःपुर में कैद, राक्षसियों द्वारा सावधानतापूर्वक रक्षित, एक वेणी बनाये हुए (शृंगार-रहित) वे सदा उदास और आपके ध्यान में मग्न रहते हुए भूमि पर सोती हैं, उनका रंग ऐसे ही फीका पड़ गया है जैसा कि शीतकाल में कमलिनी शोभा-विहीन हो जाती है। रावण से कोई भी सम्बन्ध न रख (प्रलोभनों से पृथक् रहकर) वह मरने के लिए उद्यत है।

विज्ञाप्यश्च नरव्याघ्रो रामो वायुसुत त्वया।
अखिलेनेह यद् दृष्टमिति मामाह जानकी॥ ८॥

हे नरकेसरी! सीताजी ने मुझसे कहा था कि जैसा कुछ तुम यहाँ देखकर जा रहे हो वह समस्त वृत्तान्त तुम ज्यों-का-त्यों श्रीराम से कह देना।

अयं चास्मै प्रदातव्यो यत्नात्सुपरिरक्षितः।
ब्रुवता वचनान्येवं सुग्रीवस्योपशृण्वतः॥ ९॥

सुग्रीव के समक्ष इन सब बातों को सुनाते हुए इस चूड़ामणि को जिसे मैंने यत्नपूर्वक सुरक्षित रखा है, श्रीराम को देना—

जीवितं धारयिष्यामि मासं[2] दशरथात्मज।
ऊर्ध्वं मासान्न जीवेयं रक्षसां वशमागता॥ १०॥

(और यह भी कह देना कि) हे दशरथनन्दन! मैं एक मास तक तुम्हारी प्रतीक्षा में जीवित रहूँगी एक मास (वस्तुतः दो मास) की अवधि बीत जाने पर मैं अपने प्राण त्याग दूँगी, क्योंकि मैं राक्षसों के फंदे में आ फँसी हूँ।

इति मामब्रवीत्सीता कृशाङ्गी वरवर्णिनी।
रावणान्तःपुरे रुद्धा मृगीवोत्फुल्ललोचना॥ ११॥

हे राघव! हिरनी के समान प्रफुल्लित नेत्रोंवाली, रावण के अन्तःपुर में अवरुद्ध=कैद, कृशाङ्गी और धर्मचारिणी सीता ने इस प्रकार के वचन मुझसे कहे हैं—

एतदेव मयाख्यातं सर्वं राघव यद्यथा।
सर्वथा सागरजले सन्तारः प्रविधीयताम्॥ १२॥

---

१. किसी भाषा के कवि ने इसी श्लोक के आधार पर राम एवं हनुमान् के वार्त्तालाप का वर्णन इन शब्दों में किया है—

कहो हनुमान् मुझे यह तो,
क्या सीता जीवित है जगमाहीं।
जीती है सीता भगवन्,
पर सूख गई काँटें की नाईं॥
सूख के सीता काँटा भई,
पुनि जीवित है कैसे वह भाई।
प्राण तो आपके चरणों में है,
यम आवत है कछु पावत नाहीं॥

२. इसी काण्ड में सर्वत्र दो मास की अवधि का वर्णन आया है। ऐसा प्रतीत होता है यहाँ किसी ने मूल पाठ में कुछ परिवर्तन किया है।



हे रघुकुलशिरोमणि राम! मैंने जैसा और जो कुछ देखा तथा सुना वह सारा वृत्तान्त आपसे कह दिया है। अब आप जैसे भी हो समुद्र को पार उतरने का उपाय सोचिए।

एवमुक्तो हनुमता रामो दशरथात्मजः।
तं मणिं हृदये कृत्वा प्ररुरोद सलक्ष्मणः॥ १३॥

हनुमान् द्वारा इस प्रकार सीता के वृत्तान्त के कहे जाने पर श्रीराम उस चूड़ामणि को हृदय से लगा लक्ष्मण-सहित रोने लगे।

तं तु दृष्ट्वा मणिश्रेष्ठं राघवः शोककर्षितः।
नेत्राभ्यामश्रुपूर्णाभ्यां सुग्रीवमिदमब्रवीत्॥ १४॥

उस चूड़ामणि को देखकर श्रीराम शोक से व्याकुल हो गये और आँखों में आँसू भरकर सुग्रीव से बोले—

यथैव धेनुः स्रवति स्नेहाद्वत्सस्य वत्सला।
तथा ममापि हृदयं मणिरत्नस्य दर्शनात्॥ १५॥

जैसे बछड़े के स्नेह से गौ के स्तनों से दूध टपकने लग जाता है उसी प्रकार इस श्रेष्ठ मणि को देखकर मेरा हृदय भी द्रवित हो गया है।

मणिरत्नमिदं दत्तं वैदेह्याः श्वशुरेण मे।
वधूकाले यथाबद्धमधिकं मूर्ध्नि शोभते॥ १६॥

पाणिग्रहण के अवसर पर यह चूड़ामणि मेरे ससुर महाराज जनक ने सीता को प्रदान की थी। सीताजी के मस्तक पर यह मणि अत्यन्त सुशोभित होती थी।

इतस्तु किं दुःखतरं यदिमं वारिसम्भवम्।
मणिं पश्यामि सौमित्रे वैदेहीमागतां बिना॥ १७॥

हे लक्ष्मण! इससे बढ़कर मेरे लिए और कौन-सी दुःख की बात होगी कि जल में उत्पन्न होनेवाली इस चूड़ामणि को मैं सीता के बिना ही देख रहा हूँ।

चिरं जीवति वैदेही यदि मासं धरिष्यति।
न जीवेयं क्षणमपि बिना तामसितेक्षणाम्॥ १८॥

हे लक्ष्मण! सीता एक मास (दो मास) जीवित रही तो निश्चय ही बहुत समय तक जीवित रहेगी। मैं उस कृष्णनयनी के बिना क्षणभर भी जीवित नहीं रह सकता।

नय मामपि तं देशं यत्र दृष्टा मम प्रिया।
न तिष्ठेयं क्षणमपि प्रवृत्तिमुपलभ्य च॥ १९॥

हे हनुमन्! तुम मुझे भी वहीं ले चलो जहाँ तुमने मेरी प्राणप्रिया को देखा है। उसका पता पाकर तो मैं क्षण भर भी अन्यत्र नहीं ठहर सकता।

॥ इति सुन्दरकाण्डम्॥

—०—

सुन्दरकाण्ड एक दृष्टि में—

सर्ग	४१
श्लोक-संख्या	७०४
टिप्पणियाँ	२१